शोधादर्श

56

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, लखनऊ

भ० महावीर स्वामी

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, श्री महावीर जी

आद्य सम्पादक : (स्व.) डॉ. ज्योति प्रसाद जैन
प्रधान सम्पादक : श्री अजित प्रसाद जैन
सम्पादन सलाहकार : डॉ. शशि कान्त
सम्पादक : श्री रमा कान्त जैन

प्रकाशक :
तीथकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र.
ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ– २२६ ००४

णाणं णरस्स सारं- सच्चं लोयम्मि सारभूयं

शोधादर्श -५६

वीर निर्वाण संवत् २५३१ जुलाई २००५ ई.

विषय क्रम

१.	गुरुगुण-कीर्तनः महात्मा भगवानदीन	श्री रमा कान्त जैन	१
२.	एक विचित्र जैन प्रस्तराङ्कन	डॉ. ज्योति प्रसाद जैन	८
३.	इस्लाम और पशुवध	साहु शैलेन्द्र कुमार जैन	९
४.	सम्पादकीय : चमत्कार की जयजयकार	श्री अजित प्रसाद जैन	१०
५.	खारवेल	डॉ. शशि कान्त	१२
६.	दिगम्बरत्व की मर्यादा	डॉ. अनंग प्रद्युम्न कुमार	२१
७.	नग्नत्व और मूलगुण - एक चिन्तन	श्री जमना लाल जैन	२३
८.	जिनभक्त ओखरिका द्वारा स्थापित वर्धमान प्रतिमा	डॉ. शैलेन्द्र कुमार रस्तोगी	२६
९.	जैन संस्कृति की प्राचीन धरोहर : कंकाली टीला	श्री सुरेशचन्द जैन बारौलिया	२८
१०.	जैन महिलाओं का धार्मिक विश्वास	श्रीमती अनुभूति	२९
११.	शाकाहार- एक जीवन्त आहार	डॉ. चीरंजीलाल बगड़ा	३१
१२.	चिन्तन-कण : परमेष्ठी नवकार मंत्र	श्री आसूलाल संचेती	३५
१३.	उपालम्भ देवानंदा का	जस्टिस एम. एल. जैन	३९
१४.	पारदर्शी कुण्डली	सन्त ऊँ पारदर्शी	४१
१५.	मन का करूँ अभिषेक बनूँ पावन	डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल	४२
१६.	मैं कहता हूँ आतमदेखी	श्री मनोहर मारवडकर	४३
१७.	परिवेश	डॉ. परमानन्द जड़िया	४४

१८. पहले आप	श्री जयराम दास रस्तोगी	४४
१६. सामयिक परिदृश्य : क्षणिकाएं	श्री रमा कान्त जैन	४५
२०. तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र., प्रगति प्रतिवेदन वर्ष २००४-२००५	श्री अजित प्रसाद जैन	४६
२१. कुवलयमाला कहा	श्री रमा कान्त जैन	५१
२२. समाचार विमर्श :	श्री रमा कान्त जैन	
मुम्बई में शाकाहार का बोलबाला;		५२
कुतिया की ममता ने बचाया इंसान के बच्चे को;		५२
बद्रीनाथ पर १६१६ किलो का निर्वाण लाडू चढ़ाया		५३
२३. स्वास्थ्य चर्चा	श्रीमती आशा जैन	५४
२४. काव्य-संध्या डॉ. ज्योति प्रसाद जैन के नाम		५५
२५. श्रुत पंचमी - शोध पुस्तकालय स्थापना दिवस		५६
२६. वीर शासन जयन्ती		५७
२७. समाचार विविधा		५८
२८. सूचना		६१
२६. साहित्य-सत्कार :		
पंडित जी; Satkhandagam-Dhavala- Jivasthan-Sat-Prarupana; The Jaina Way of Life	डॉ. शशि कान्त	६२
समयसार (समयप्राभृत) खण्ड-१; असहमत संगम; रतनदीप; तीर्थंकरस्तव; श्रमणरत्न आचार्य श्री सुबलसागर महाराज; जैन रामायण; बाबू ज्योति प्रसाद जैन: व्यक्तित्व और कृतित्व; शब्दाभिषेक; मानस्तंभ; स्थूलिभद्र संदेश शतकांक; श्री वर्द्धमान	श्री रमा कान्त जैन	६५
३०. अभिनन्दन		७२
३१. शोक संवेदन		७४
३२. आभार		७५
३३. पाठकों के पत्र		७६
३४. श्री अजित प्रसाद जैन	श्री रमा कान्त जैन	८४

महात्मा भगवानदीन

उदारचेता युगपुरुष, अमर भगवानदीन।
जग को सच की पहचान, तुमने अच्छी दीन।।
जुग-जुग जीओ तुम यहाँ, सींचो प्राण नवीन।
गुरुकुल फिर चलाओ तुम, बालक बनें प्रवीण।।

उपर्युक्त दोहों में जिन भगवानदीन जी को गुणानुवाद सहित स्मरण किया गया है वह 'महात्मा' के विरुद से ख्यात रहे। परन्तु, जैसा कि **'जीवन साहित्य'** के सम्पादक (स्व.) श्री यशपाल जैन ने अपने संस्मरणात्मक लेख 'मौलिक प्रतिभा के धनी महात्माजी' में लिखा है, "न महात्माओं जैसा बाना, न वैसी आकृति, न शब्दावली। कपड़े के नाम तन पर घुटनों तक का कोकटी का जांघिया और सफेद खादी की चादर। बस, यह था उनका लिबास। शरीर दुबला-पतला, सिर पर छोटे-छोटे बाल, चेहरे पर बेतरतीब दाढ़ी-मूँछें। साधु-महात्मा का कोई भी बाह्य उपकरण उनके पास न था, फिर भी उनकी आकृति में और वाणी में कुछ था, जिससे लगा कि वे कोई सामान्य व्यक्ति नहीं हैं। धीरे धीरे मैंने अनुभव किया कि उन्हें 'महात्मा' की संज्ञा अकारण नहीं दी गयी है। उनका जीवन मुझे विशुद्ध नैतिक और आध्यात्मिक भूमिका पर आधारित दिखाई दिया। साधु साधुत्व की मर्यादा में बँधकर प्रायः बड़ी लाचारी का सामना करता है और अधिकांश साधुओं के लिये साधुता सहज नहीं रहती। लेकिन महात्मा जी की सबसे बड़ी खूबी मुझे यह लगी कि साधुता उनके लिये भार न थी, अत्यन्त सहज स्वाभाविक थी।"

यद्यपि बाल्यकाल से ही ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम (गुरुकुल) हस्तिनापुर के अधिष्ठाता के रूप में महात्मा भगवानदीन जी का नाम मेरे कर्णकुहुरों में पड़ता रहा, अब से कुछ समय पूर्व तक वे मेरे लिये नितान्त अपरिचित ही थे। गत वर्ष श्री जमनालाल जैन, सारनाथ, के सौजन्य से मुझे महात्मा जी की पुस्तक **'सत्य और जीवन'** पढ़ने को प्राप्त हुई और उसके माध्यम से महात्मा जी के विषय में कुछ जानने-समझने का अवसर मिला। पं. अजित प्रसाद, एडवोकेट, की आत्मकथा **'अज्ञात जीवन'** में 'ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम' और 'भगवानदीन जी का मुकदमा' के अन्तर्गत भी उनके जीवन की कुछ झलकियों को अनुस्यूत पाया। **'गुरु गोपालदास वरैया स्मृति-ग्रन्थ'**

में समाहित वरैया जी के सम्बन्ध में महात्मा जी के संस्मरणों में उनकी सूक्ष्मग्राहिणी दृष्टि और स्पष्ट दो टूक शब्दों में अपनी बात व्यक्त करने की शैली के दर्शन हुए।

११ मई, १८८४ ई. को जिला अलीगढ़ के ग्राम अतरौली में जन्मे और ४ नवम्बर, १९६२ ई. को नागपुर में दिवंगत हुए भगवानदीन जी की ७८ वर्ष ५ मास २३ दिवस की जीवनयात्रा अनेक उतार-चढ़ाव से परिपूर्ण रही। उनके पिताजी श्री गंगाराम मित्तल परम्परागत रूप से श्रद्धावान दिगम्बर जैन धर्मानुयायी थे। उनकी माताजी एक उदारहृदया महिला थीं जिनके वात्सल्य की छाँव में पलकर भगवानदीन बालक से बढ़कर किशोर बने और जिनकी सरलता और सूझबूझ ने उनमें सत्य के वास्तविक रूप को समझने-परखने की विवेक बुद्धि विकसित की। कदाचित् अपने भाई-बहन से वह छोटे थे अतः सबके दुलार का पात्र थे। वह मध्यमवर्गीय परिवार के थे। श्री सम्पन्नता भले ही उनके परिवार से विमुख रही हो, सन्तुष्टि का वातावरण वहाँ रहा।

जब वह १६ वर्ष के थे मेधावी भाई ने विषपान कर अपनी जीवन-लीला समाप्त कर दी। १७ वर्ष के हुए सिर से पिता का साया हट गया। २०-२१ की आयु प्राप्त करते-करते स्नेहमयी माँ मुख मोड़ गई और फिर कुछ समय पश्चात् ही मृत्यु उनके बहनोई को लील बहन को विधवा बना गई। जल्दी ही एक-एक कर आई इन विपत्तियों ने किशोर भगवानदीन जी को झकझोर कर रख दिया। मिडिल कक्षा से ही पढ़ाई बन्द कर उन्हें नौकरी की खोज करनी पड़ी। संयोग से रेलवे में उन्हें नौकरी मिल गई और अपनी कार्यक्षमता, सूझ-बूझ व अध्यवसाय से वह तरक्की कर शीघ्र ही स्टेशन मास्टर के पद पर भी पहुँच गये। किन्तु भवितव्यता कुछ और ही थी। एक दिन अपना घर और घर की जिम्मेदारियों को अज्ञात भविष्य की कृपा पर छोड़ २६ वर्ष की वय में उन्होंने लगी लगाई नौकरी को लात मार दी, त्यागपत्र दे दिया। और आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण कर सप्तम प्रतिमाधारी साधु बन गये। ऐसा क्यों हुआ, इसकी निश्चित जानकारी उपलब्ध नहीं है।

पं. अजित प्रसाद, एडवोकेट, के **'अज्ञात जीवन'** से विदित होता है कि भगवानदीन जी की जीवनसंगिनी भी आजन्म ब्रह्मचर्य धारण कर मुम्बई श्राविकाश्रम में चली गई थीं और उनकी विधवा बहिन भी दिल्ली में जैन महिलाश्रम में चली गई थीं।

इन दोनों महिलाओं की इस प्रकार विरक्ति का कारण कदाचित् भगवानदीन जी द्वारा इस प्रकार अकस्मात नौकरी त्याग ब्रह्मचारी साधु बन जाना रहा हो, अथवा यह भी संभव है कि किन्हीं कारणों से इन महिलाओं के मन में उपजे वैराग्य भाव ने भगवानदीन जी को घर छोड़ने पर विवश किया हो। वास्तविकता क्या है, यह कहना कठिन है। परन्तु इस घटना ने भगवानदीन जी के जीवन में एक नये अध्याय को जन्म दे दिया। वह भगवा वस्त्र धारण कर देश में विभिन्न स्थानों, तीर्थों और पर्वतों पर भ्रमण करने लगे। एक दिन बदरीनाथ-मार्ग पर अकस्मात उनकी एक मद्रासी सन्यासी से भेंट हो गई। उसने इस तेजस्वी युवा को साधु-वेश में घूमते देख खेद व्यक्त किया और समाज व देश की भलाई का कार्य करने की सलाह उन्हें दे डाली। भगवानदीन जी को सन्यासी की बात जंच गई और वह उलटे पांव वापस लौट पड़े। उन्होंने साधु वेश त्याग दिया। कुछ मित्रों की सलाह पर उनके मन में एक गुरुकुल, आदर्श गुरुकुल, स्थापित करने की ललक जगी। इस हेतु उन्होंने ढाई माह तक देश-भ्रमण किया। इसी क्रम में जयपुर जा पहुँचे। वहाँ जैन शिक्षण समिति के छात्रावास का अधिष्ठाता पद संभाला। उस अवधि में उन्होंने धार्मिक ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया और अंग्रेजी का अभ्यास बढ़ाया। संयोग से सन् १६१० ई. में जयपुर में सम्पन्न ऑल इंडिया जैन एसोसियेशन के वार्षिक अधिवेशन में सर्वसम्मति से हुए निश्चयानुसार पहली मई १६११ ई. को अक्षय तृतीया के दिन हस्तिनापुर (जिला मेरठ) में **'श्री ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम'** की स्थापना हुई। उसके अधिष्ठाता पद का दायित्व भगवानदीन जी ने स्वतः स्वीकार कर लिया। अपने साथ वह अपने तीन वर्षीय एकमात्र पुत्र वीरेन्द्र को तथा अपने भांजे जैनेन्द्र कुमार को भी इस आश्रम में लिवा लाये।

भगवानदीनजी ने गुरुकुल का संचालन अपने ढंग से किया था। उनके रहते वह कठोर अनुशासन और रूढ़िभंजन का पर्याय बन चला था। बालकों को निर्भीक, स्वाभिमानी और स्वावलम्बी बनने की शिक्षा दी जाती थी। सभी बालक मिलकर कुएँ से पानी खींच लेते थे और थोड़े समय में स्नान कर, अपने वस्त्र धोकर अपने निवास स्थान पर आ जाते थे। बालक कटीली भूमि पर, जहाँ और लोग बूट पहनकर चलते थे, नंगे पैर कूदते चले जाते थे। और गुरुजी की किसी भी आज्ञा को, बिना ऊहापोह के, शिरोधार्य करते थे। उन्हें भोजन स्वाद के लिये नहीं, अपितु स्वास्थ्य के लिये दिया जाता था। कभी-कभी नमक रहित भोजन का भी अभ्यास कराया जाता था। सभी

बालक अपनी भोजन थाली, कटोरी, गिलास स्वयं उठाकर मांजकर रख देते थे, उसके लिये कहार की व्यवस्था नहीं थी। भगवानदीन जी अपने छात्रों को प्रतिवर्ष देश के विभिन्न भागों की यात्रा कराते थे ताकि उन्हें प्रत्यक्ष अनुभव मिले। उन यात्राओं को वह 'सरस्वती-यात्राएं' कहते थे। आश्रम के सभी सदस्य मन्दिर में देव दर्शन करने हेतु नंगे सिर जाते थे और वहाँ द्रव्य नहीं चढ़ाते थे। भगवानदीन जी ने बालकों को धर्म का सही मर्म बताया, परन्तु यह बात परम्परा पोषक पंडितों और धनिक वर्ग के गले नहीं उतरी।

भगवानदीन जी का कहना था कि उनके आश्रम का कोई भी विद्यार्थी झूठ नहीं बोलता था, चोरी या मिथ्याचार नहीं करता था या किसी काम से जी नहीं चुराता था। इस प्रकार उनके प्रयोग काफी सफल रहे, किन्तु दुर्भाग्य से समाज उनके क्रान्तिकारी प्रयोगों को सहन नहीं कर सका और उन्हें तथा उनके सहयोगियों को शीघ्र ही सन् १९१५ ई. में इस आश्रम से अपना सम्बन्ध विच्छेद करना पड़ा। उस समय आश्रम में ६० बालक थे जो मेरठ और उसके आसपास के क्षेत्र के प्रायः मध्यमवर्गीय परिवारों से आये थे।

भगवानदीन जी ने इस गुरुकुल में छात्रों के साथ हुए अनुभव के आधार पर उपद्रवी, शरारती बालकों को कैसे रास्ते पर लाया जाय, कैसे सिखाया जाय, इस विषय पर कहानियां लिखीं जो **'बालक सीखता कैसे है'** शीर्षक से छपीं। साथ ही बाल-मनोविज्ञान पर अपनी पुस्तकों **'माता-पिताओं से'** तथा **'बालक अपनी प्रयोगशाला में'** का प्रणयन किया था। उन्होंने गुरुकुल के अपने इस अल्पतम काल का एक इतिहास भी लिखा, जो अप्रकाशित है।

हस्तिनापुर के ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम से अलग होने के उपरान्त जल्दी ही महात्मा गांधी की विचारधारा से प्रभावित होकर भगवानदीन जी ने अपने को राजनीति के राष्ट्रीय मंच में सक्रिय पाया। १० अप्रैल, १९१९ को दिल्ली जाते हुए पलबल रेलवे स्टेशनपर महात्मा गांधी गिरफ्तार कर लिये गये। इस घटना की प्रतिक्रिया स्वरूप ११ अप्रैल को पानीपत में पूर्ण हड़ताल हुई। वहाँ विशाल जनसभा को सम्बोधित करने वालों में भगवानदीन जी भी थे। उन्होंने अपने भाषण में रौलट ऐक्ट, अंग्रेजों और पुलिस की निन्दा की। अपने वक्तव्य को प्रभावी बनाने के लिये अरबी-फारसी में कुछ शेर भी कहे। उनमें से एक शेर था-

"वह कौन सा उकदा है जो वा हो नहीं सकता,
हिम्मत करे इन्सान तो क्या हो नहीं सकता।।"

(अर्थात् वह कौन सा फंदा है जो नहीं खुल सकता है, यदि मनुष्य हिम्मत करे तो सब कुछ हो सकता है।)

१२ जुलाई से १३ सितम्बर १६१६ तक उन पर जिला मजिस्ट्रेट की कचहरी में मुकदमा चला और उन्हें रौलट ऐक्ट का विरोध करने का अभियुक्त पाया गया। किन्तु उनके जैन ब्रह्मचारी उपदेशक होने तथा उनके जीवन व्यवहार, साधारण सदाचार और बलिष्ठ शरीर न होने को ध्यान में रखते हुए छह मास का सादा कारागार का दंड दिया गया। उसकी अपील सेशन जज करनाल के यहाँ की गई जो नामंजूर हो गई। तब लाहौर हाईकोर्ट में सर मोतीसागर ने उसकी निगरानी दाखिल की, किन्तु तब तक अन्य राष्ट्रीय बन्दीजन के साथ भगवानदीन जी भी बादशाही हुक्म से बन्दीखाने से छोड़ दिये गये। थोड़े दिन बाहर रहने के उपरान्त भगवानदीन जी को पुनः सिवनी में कांग्रेस के सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लेने के कारण सपरिश्रम कारागार का दण्ड सहना पड़ा। उन्होंने जेल में आतंककारी सरकार का अन्न-जल ग्रहण करना अस्वीकार कर दिया। गरमी के दिन थे। गले और जिव्हा में काँटे पड़ गये। जिस दिन वह मरणासन्न थे, उस दिन एक बैरिस्टर अपने घर से जल-फल लाये। भगवानदीन जी ने अनशन तोड़ा। फिर प्रतिदिन जेल में उनके लिये बैरिस्टर साहब के घर से आहार-पानी आता रहा।

सन् १६२० में उन्होंने नागपुर में 'असहयोग आश्रम' की स्थापना की, जो प्राचीनकाल के ऋषि-आश्रमों की तरह था। आश्रमवासी सारा काम स्वयं करते थे। वहाँ ऊँच-नीच या जात-पाँत का कोई भेदभाव नहीं था। सब मितव्ययता से रहते थे। राजनीतिक क्षेत्र में निस्सन्देह यह एक अभिनव प्रयोग था। भगवानदीन जी ने लगभग सभी प्रमुख राष्ट्रीय आन्दोलनों में भाग लिया। सन् १६२१ में वह मध्यप्रदेश कांग्रेस के अध्यक्ष बने और सन् १६२३ में नागपुर में झण्डा-सत्याग्रह के कर्णधार रहे।

देश की स्वतन्त्रता प्राप्ति पर्यन्त अनेक बार उन्हें जेल-यात्रा का सुयोग प्राप्त हुआ और उसका उन्होंने भरपूर सदुपयोग किया। स्व. जैनेन्द्र कुमार जी के शब्दों में, "हर जेल-प्रवास में अथक होकर उन्होंने लिखा। कापियों-पर-कापियाँ और रजिस्टर-पर-रजिस्टर भरते चले गये। सामग्री की दृष्टि से आसमान से लेकर धरती तक उसमें क्या कुछ न था। गद्य, पद्य, कहानी, विचार, भजन, गीत, तत्त्वज्ञान, अनुसन्धान, नीतिज्ञान, दोहे, श्लोक, चौपाई और जाने क्या-क्या। पर लिखने से आगे

जैसे महात्मा जी को उससे सम्बन्ध न रहा। जहाँ जो चीज रही, रह गई। फिर क्या उनका बना मानो इससे उन्हें वास्ता नहीं।" इस अर्थ में वह वास्तव में निस्संग थे।

उन्होंने कुछ समय इलाहाबाद में रहकर **'विश्ववाणी'** (हिन्दी) और **'नयाहिन्द'** (हिन्दी-उर्दू) पत्रिकाओं के सम्पादन में **'भारत में अंग्रेजी राज'** के लेखक पं. सुन्दरलाल जी का सहयोग किया। सन् १९४७ ई. से नागपुर को ही उन्होंने अपना स्थायी निवास बना लिया। सन् १९५१ के अन्त में वह वर्धा में वहां से प्रकाशित **'जैन जगत'** मासिक के सम्पादक श्री जमनालाल जैन के अनुरोध पर डेढ़-दो माह उनके निवास पर रहे और उक्त पत्रिका को पर्याप्त विचारोत्तेजक एवं प्रेरणाप्रद सामग्री प्रदान की। श्री जमनालाल जी ने उन दिनों की याद करते हुए लिखा है, "महात्मा जी प्रतिदिन प्रातःकाल एकाध विचार लिखाया करते थे। पर यह सारी सामग्री जहाँ की तहाँ धरी रह गयी। उन्होंने कभी यह चिन्ता नही की कि जो लिखाया है, वह किसके पास है, छपा या नहीं और प्रकाशक कौन है। ज्ञान को वे व्यवसाय की चीज नहीं मानते थे।"

पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली; भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली; सर्वसेवा-संघ प्रकाशन, वाराणसी; पार्श्वनाथ शोधपीठ, वाराणसी; शुचिता प्रकाशन, सारनाथ; और भारत जैन महामण्डल, वर्धा से उनकी अनेक कृतियां प्रकाशित हुईं। उनकी **'जवानो'** तथा **'जवानो राह यह है'** पुस्तकों को पढ़कर पं. जवाहरलाल जी फड़क उठे और उन्होंने कहा 'ये पुस्तकें तो सेना के जवानों को पढनी चाहियें।'

जीवन भर सत्य के खोजी रहे भगवानदीन जी ने जैन धर्म और अन्य धर्मों का जो अध्ययन किया, वह केवल पंडिताऊ या तोतारटंत नहीं था। उन्होंने प्रकृति, मानवीय स्वभाव, शरीर संरचना, विज्ञान तथा कालगत परिस्थितियों को ध्यान में रखकर उनका मूल्यांकन किया और अपने ढंग से व्याख्याएं की। भले ही अनेक परम्परापोषक उनसे असहमत रहे। ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम में रहते हुए उन्होंने **'तत्त्वार्थसूत्र'** पर भाष्य लिखना प्रारम्भ किया था जो जेल यात्राओं में कहीं विलुप्त हो गया। किन्तु **'तत्त्वार्थ सूत्र'** के दूसरे अध्याय के विवेचन स्वरूप उनकी कृति **'लोकभाव या आत्मबल'**, ग्यारह प्रतिमाओं पर स्वतंत्र चिन्तन स्वरूप **'समाज सेवा के ग्यारह सोपान'**, **'प्रवचनसार'** पर स्वतन्त्र विवेचन **'स्वाध्याय'** और सोलहकारण भावनाओं पर स्वतंत्र चिंतन स्वरूप उनकी कृति **'नेता बनने के उपाय'** आज भी मननीय हैं। उनकी कृति **सत्य की खोज** और जैन संस्कृति पर उनका लेख काफी

लोकप्रिय रहे। वह मात्र दार्शनिक या गम्भीर चिन्तक ही नहीं थे। विनोदी और बाल-साहित्य के सर्जक भी थे। दो बिल्लियों के जीवन पर उन्होंने ५७ कहानियां लिखी थीं। उन्होंने निबन्ध भी लिखे जिनकी खूबी जैनेन्द्र जी के शब्दों में यह रही, "भाषा एकदम सहज और बोलचाल की है; भाव वह हैं जो आध्यात्मिकों के लिये गूढ़ पड़ते हैं। अत्यन्त कठिन विषय को बेहद सरलता से वे उपस्थित करते हैं और किसी पक्ष का खण्डन न करके सत्य पक्ष को ऐसे चित्रित करते हैं मानो वह उनका सबका समुच्चय ही हो।"

सारा जीवन देश सेवा और समाजसेवा को अर्पित करने वाले प्रबुद्ध चिन्तक-लेखक भगवानदीन जी भले ही स्वयं अपरिग्रही और अनासक्त रहे, थे पारिवारिक। उन्हें जीवन में अनेक त्रासदियों को सहना पड़ा जिसमें एक उनके एकमात्र पुत्र का असामयिक निधन भी था। वह अपनी पुत्रवधु और पौत्रों के साथ रहते थे। वृद्धावस्था थी, दमे का रोग था और जीविका चलाने का कोई सहारा नहीं। कुछ इष्ट मित्रों को इसकी चिन्ता सताई और उन्होंने उनका सम्मान कराने की योजना बनाई। ३ अगस्त, १९५९ को भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने नागपुर जाकर उनका भावभीना अभिनन्दन किया और उन्हें पच्चीस हजार रुपये की थैली भेंट की। साथ ही सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन, वाराणसी ने उनकी रचनओं के प्रकाशन के उपलक्ष्य में १५० रुपये प्रतिमाह देना तय किया। आज महात्मा भगवानदीन हमारे बीच नहीं हैं, किन्तु उनके कार्य उनको अमर करने के लिये पर्याप्त हैं। विगत ११ मई को उनकी १२१वीं जन्म जयन्ती के उपलक्ष्य में यह विनयांजलि अर्पित है।

- रमा कान्त जैन
ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ

सत्त्वेषु मैत्रीं, गुणिषु प्रमोदं क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ सदा ममात्मा विदधातु देव।।

- आ. अमितगति कृत भावनाद्वात्रिंशतिका से

भावार्थ - हे जिनेन्द्र देव ! मेरी आत्मा सदा सब जीवों के साथ मैत्रीभाव, गुणी जनों के प्रति प्रेम, दीन दुखी जीवों के प्रति करुणा भाव और प्रतिकूल आचरण करने वालों के प्रति साम्यभाव धारण करे।

एक विचित्र जैन प्रस्तराङ्कन

-डॉ. ज्योति प्रसाद जैन

सन् १८८५ में प्रकाशित आर्केलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट (जिल्द २२, पृ. ३५) में अपने सन् १८८२-८३ के अन्वेषण कार्य का विवरण देते हुए प्रसिद्ध पुरातत्त्वज्ञ जनरल कनिंघम ने उसी समय के लगभग मथुरा संग्रहालय में लाये गये एक प्रस्तरांकन का संक्षिप्त वर्णन किया है। यह कलाकृति कंकाली टीले से अथवा उसी के आसपास के किसी अन्य टीले से प्राप्त की गई थी और उनके मतानुसार असन्दिग्ध रूप से जैनधर्म से सम्बंधित थी। मध्य में एक पादपीठ (मूढ़ेनुमा) के ऊपर एक सर्वथा दिगम्बर खड़ी हुई पुरुषाकृति है जिसका बांया हाथ बांये कूल्हे पर टिका है और दाहिना हाथ उठा हुआ है-जिसके ऊपर का भाग खण्डित है-और जो कनिंघम साहब के अनुसार उपदेश की मुद्रा में था। सम्भव है अभय या वरद मुद्रा में हो। उस मध्य में स्थित प्रतिमा के दोनों ओर सप्तफणच्छत्र से युक्त एक-एक मनुष्याकृति है जो एक कूप में से उठती प्रतीत होती है। वास्तव में इनमें से एक आकृति पुरुष की और दूसरी स्त्री की प्रतीत होती है। दोनों मध्यवर्ती आकृति की ओर मुख किये और हाथ जोड़े खड़ी प्रतीत होती हैं। जिन कूपों में से वे निकलती प्रतीत होती हैं वे कूप न होकर नाग-नागी की पूंछों के मण्डल मालूम पड़ते हैं। मध्यवाली आकृति उन दोनों से कुछ ऊँची है। तीनों आकृतियों के कुछ ऊपर एक छत्र सा है जो आकाश का सूचक मालूम पड़ता है और उस पर देव-दुन्दुभि- पंचमहाशब्द अर्थात् श्रृंग, तम्मत, शंख, भेरि और जयघंट दृष्टिगोचर होते हैं।

मध्य वाली सिंहासनारूढ़ मूर्ति निश्चय ही किसी पूज्य पुरुष की है। किन्तु वह कायोत्सर्ग आसन और ध्यान मुद्रा में नहीं है जैसी कि तीर्थंकर या जिनमूर्तियां प्रायः होती हैं। इस मूर्ति के पैर कुछ अधिक खुले हैं और हाथों की स्थिति भी जिनप्रतिमाओं की दृष्टि से विचित्र है।

ऐसा लगता है कि इस प्रस्तरांकन में भगवान पार्श्वनाथ द्वारा नागराज धरणेन्द्र और उनकी पत्नी पद्मावती यक्षी को धर्मोपदेश देने का और उन दोनों के द्वारा भगवान की पूजा-स्तुति किये जाने का भाव प्रदर्शित किया गया है। किन्तु जिस समय भ. पार्श्वनाथ ने तापसी के जलते हुए लक्कड़ में से नाग-नागी की रक्षा की थी उस समय वह स्वयं राजकुमार अवस्था में थे- सवस्त्र थे। और जिस समय मुनि अवस्था

में उन पर कमठ के जीव दैत्य ने उपसर्ग किया था तथा धरणेन्द्र और पद्मावती ने उक्त उपसर्ग से उनके शरीर की रक्षा की थी वे ध्यानस्थ थे और उसी समय उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ था। उपसर्ग निवारण के पश्चात् उनके भक्त धरणेन्द्र-पद्मावती की उनकी स्तुति, पूजा आदि करना और स्वर्गों में देव दुन्दुभि आदि द्वारा हर्ष व्यक्त किया जाना तो सुसंगत एवं परम्परा अनुश्रुति से समर्थित है किन्तु उस अवस्था में भक्तद्वय को अभयदान या उपदेश दान परम्परा से कुछ मेल नहीं खाता। यह प्रस्तरांकन लगभग दो सहस्र वर्ष प्राचीन है। हो सकता है कि उस समय कुछ इस प्रकार की अनुश्रुति लोक में प्रचलित रही हो अथवा कलाकार ने ही भ. पार्श्वनाथ के जीवन की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना के भाव प्रदर्शन में कुछ अधिक स्वतन्त्रता बरती हो।

(जैन सन्देश शोधांक १८-२६ मार्च, १९६४- से-साभार उद्धृत -सम्पादक)

इस्लाम और पशुवध

(वयोवृद्ध चिन्तक श्री शैलेन्द्र कुमार जैन, एडवोकेट, खुरज़ा से इस विषय पर प्राप्त निम्नलिखित तीन झलकियां यहाँ प्रस्तुत हैं- सम्पादक)

● एक हाजी आये आज सुबह मिलने। बताया कि उनके धर्म में भी जानवर मारना, काटना मना है। शिकार तो एकदम मना। बताया कि उनके वहां भी काटने का काम करने वाला अलग आदमी होता है। एक आदमी था, अमरोहे से आया था खुरजा में। वह यह काम करता था। बड़ी बुरी मौत मरा तड़प तड़प कर। तोबा!

● एक आदमी कसाई का काम करता था। बहुत जानवर काटे। बेझिझक ! बुढ़ापे में बेजान होकर खाट पकड़ ली। चाहे जब रोकर चिल्लाता था-'अरे अरे बचाओ मार लिया' और रोता था। हाथ से वहां टटोलता था जहां कष्ट होता था। घरवाले देखते बैलों के सींग मारने से बने जख्म से ताजा खून निकलते हुए। जब तक जिंदा रहा इसी तरह तड़पता रहा।

● एक मुसलमान विद्वान हैं। उनका कहना है अरब में जहां से इस्लाम शुरू हुआ वहाँ की बात और थी। वहां नाज, सब्जियां कुछ थी ही नहीं। यहां तो कुदरत ने इतनी उम्दा तरकारियां दी हैं। पता नहीं तब भी, क्यों, यहां भी बहशी बना हुआ है इन्सान।

-साहु शैलेन्द्र कुमार जैन, खुरजा

सम्पादकीय

चमत्कार की जयजयकार

(मृत्यु से तीन दिन पूर्व सिर में चोट लग जाने के उपरांत प्रधान सम्पादक श्री अजित प्रसाद जैन द्वारा लिखवाया गया यह उनका अन्तिम सम्पादकीय है। - रमा कान्त जैन)

हमारे देखने में यह आया है कि जब कहीं कोई मूर्ति जमीन के अन्दर गड़ी प्राप्त होती है तो उसे चमत्कार मान लिया जाता है और उसकी जयजयकार होने लगती है। अभी कुछ समय पूर्व लखनऊ के निकटवर्ती जिला सीतापुर के एक गाँव में नींव खोदते हुए एक जिन प्रतिमा मिली थी। हमें इसकी जानकारी नहीं है कि वह मूर्ति सांगोपांग थी अथवा कहीं से खण्डित। गाँव वालों ने मूर्ति को कहीं और देने से इन्कार कर दिया और वहीं उसके लिये एक महामन्दिर बनाने की योजना बना डाली। हमें यह नहीं पता है कि उस गाँव में जैन धर्मानुयायी कोई परिवार है भी या नहीं और वहाँ मूर्ति के पूजा-प्रक्षाल की कोई व्यवस्था हो भी सकती है या नहीं। किन्तु ऐसी योजनाओं में काम करने वाले कार्यकर्ताओं की कोई कमी नहीं रहती क्योंकि जो धन व्यय होता है, उसका हिसाब किसी को देना नहीं पड़ता। ऐसी योजनाओं में रुपया देने वाले दातार खुश रहते हैं। उन्हें 'दानवीर', 'दानशिरोमणि' जैसी उपाधियाँ सरलता से प्राप्त हो जाती हैं।

जिला बाराबंकी में एक सुदूर स्थल पर गढ़ाकोटा (किला) था, जिसके विशाल दरवाजे पर रक्षक के रूप में जिनमूर्ति को स्थापित कर दिया गया था। पर समय के साथ अब न तो गढ़ाकोटा रहा और ना ही उसका विशाल दरवाजा। सबके सब ध्वस्त हो गये।

जब पुरा सम्पदा हमारी लापरवाही से नष्टप्रायः होती जा रही हो तब अनावश्यक नवीन मन्दिर निर्माण का क्या- और कितना औचित्य है, यह विचारणीय है।

वास्तव में जिनेन्द्र भगवान के पंचकल्याणक स्थलों को स्मरण रखने के लिये उन्हें ही 'तीर्थ' संज्ञा दी गई। यह कैसी विडम्बना है कि आज अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी की जन्मस्थली (वासुकुण्ड वैशाली) तथा निर्वाण स्थली पावा (कुशीनगर के निकट पावा) का अभी तक अपेक्षित रूप में विकास नहीं हो पाया है यद्यपि सभी

इतिहासवेत्ता, पुरातत्त्ववेत्ता तथा साहित्यकार एकमत से स्वीकार करते हैं कि ये ही भगवान की जन्म और मोक्ष स्थली हैं।

कुछ ऐसे अतिशय क्षेत्र अवश्य हैं (यथा-चाँदनपुर महावीरजी, तिजारा तथा बालाजी का हनुमान मंदिर) जहाँ श्रद्धालु भक्तों की इतनी भीड़ लगी रहती है कि बहुत से दर्शनार्थियों को मूर्ति के दर्शन भी नहीं हो पाते।

कर्मकाण्ड हमने वैदिक संस्कृति से उधार लिया हुआ है। किन्तु यह तो मानना ही पड़ेगा कि व्यवहार में स्वप्रयोजन की सिद्धि के लिये सभी लालायित रहते हैं। हमारे कई महामुनि और महा आर्यिका माताओं ने कर्मकाण्ड की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करने के लिये अनेक छोटे-बड़े विधान मण्डल बना डाले। इन विधानों को करने वाले धर्मनिष्ठ श्रावक यह समझते हैं कि हम बहुत बड़ा धर्म कार्य कर रहे हैं और जिस अनुपात में व्यय होगा फल भी वैसा ही मिलेगा। वस्तुतः जैन धर्म आध्यात्मिक उत्कर्ष का धर्म है और उसमें कर्मकाण्ड की कोई उपयोगिता नहीं है।

हमारी अपनी दृष्टि में जिन मन्दिर भगवान के समवशरण के प्रतीक हैं। जिन मन्दिर जिसमें जिन प्रतिमा एक ही हो और भव्य हो, का रूप बिल्कुल वैसा ही होता है जैसे कि भगवान की दिव्य ध्वनि खिरनी अभी समाप्त हुई हो। जिनवाणी के प्रतीकरूप में प्रायः प्रत्येक मन्दिर में आवश्यक शास्त्र रहते हैं, और यह भी कि यदि कोई साधु-साध्वी भी दर्शन के समय वहाँ विहार कर रहे हों, तो वह जिन मन्दिर भगवान के चतुर्विध संघ का रूप प्राप्त कर लेता है।

२२ जून, २००५ ई.

- अजित प्रसाद जैन
प्रधान सम्पादक

शोधादर्श का नवम्बर २००५ का अंक श्रद्धेय श्री अजित प्रसाद जैन की स्मृति में प्रकाशित किया जायगा। सभी से अनुरोध है कि स्वर्गीय श्री अजित प्रसाद जैन के सम्बन्ध में अपने उद्‌गार दिनांक १५ सितम्बर, २००५ तक ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ- २२६००४ के पते पर उपलब्ध कराने का अनुग्रह करें।

विनीत-
रमा कान्त जैन

खारवेल

- डॉ० शशि कान्त

प्रायः ३सरी शती ईस्वी पूर्व से एक हजार वर्ष पर्यन्त का समय भारत के इतिहास में ऐसा है जिसके बारे में मुख्य साधन-स्रोत देश भर में वन-प्रान्तरों में बिखरे, शिला-खण्डों पर उत्कीर्ण, अभिलेख हैं। इन अभिलेखों की जानकारी विगत २०० वर्षों के भीतर ही हुई। प्रारंभ में अंग्रेज सैलानियों और सैन्य अधिकारियों की जिज्ञासा के फलस्वरूप उनकी जानकारी हुई। १८६१ ई. में Archaeological Survey of India की स्थापना के बाद पुरा-सम्पदा की खोज का कार्य भारत की ब्रिटिश सरकार की देख-रेख में विधिवत व्यवस्थित हुआ। इन अभिलेखों की लिपि को पढ़ने और उनका आशय स्पष्ट करने का कार्य भी १९वीं शती ईस्वी में यूरोपियन जिज्ञासुओं द्वारा प्रथमतः किया गया। हम भारतवासी तो अपनी लिपियों और भाषाओं को भूल ही चुके थे। ऐतिहासिक व्यक्तियों और घटनाओं के बारे में जो भी साहित्यिक उल्लेख उपलब्ध थे वे एकांगी, अतिरंजित और अस्पष्ट प्रकार के थे। यदि १९वीं शती के उत्तरार्ध में मौर्य सम्राट अशोक के और गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त के अभिलेख पढ़े न गये होते तो आज उनके बारे में कुछ भी जानकारी न होती। कलिंग के खारवेल का तो पता ही नहीं चलता क्योंकि उसके विषय में जानकारी का एकमात्र साधन-स्रोत १८२५ ई. में अंग्रेज सैलानी मि. स्टर्लिंग द्वारा अकस्मात दृष्टिगत **'हाथीगुम्फा अभिलेख'** है।

खारवेल का जैन साहित्य में कहीं उल्लेख नहीं है, अन्य भारतीय साहित्य में भी उल्लेख नहीं है और किसी विदेशी साहित्यिक स्रोत से भी उसके बारे में कोई जानकारी नहीं मिलती। उड़ीसा में पुरी जिले में उदयगिरि की पहाड़ी पर बड़ी हाथीगुम्फा के मुहाने की सिरदल पर १७ पंक्तियों में उत्कीर्ण अभिलेख जो **'खारवेल का हाथीगुम्फा अभिलेख'** के नाम से अब अभिज्ञात है, खारवेल के विषय में जानकारी का एकमात्र व एकल स्रोत है।

एक-सौ वर्ष से भी अधिक समय तक उसको पढ़ने और उसका भाष्य करने के प्रयत्न किये जाते रहे। १९२७ ई. में डॉ. काशी प्रसाद जायसवाल और डॉ. राखाल दास बनर्जी द्वारा उसका वाचन और भाष्य प्रकाशित किया गया। १९२९ ई. में डॉ० बेनी माधव बरूआ ने भी इसका वाचन और भाष्य प्रकाशित किया।

१६४२ ई. में डॉ. दिनेशचन्द्र सरकार ने भी भाष्य दिया। परन्तु जायसवाल-बनर्जी और बरूआ के भाष्यों को ही आधार बनाया जाता रहा। ये कोई भी भाष्य उस अभिलेख का आशय सम्यक् रूप से स्पष्ट नहीं कर सके।

१६७१ ई. में हमारी पुस्तक The Hathigumpha Inscription of Kharavela and the Bhaaru Edict of Asoka - A Critical Study प्रकाशित हुई। उसमें हमने इस विषय में हुई समस्त शोध का मंथन कर और भाषा-शैली व भाव-व्यंजना को दृष्टिगत रखते हुए अभिलेख का पुनर्वाचन किया तथा त्रुटित, खडित, अस्पष्ट या मिट गये अंशों को पुनर्स्थापित कर एक सुवाच्य पाठ प्रस्तुत किया। उसका आशय भी भाव, प्रसंग, परम्परा और ऐतिहासिक तथ्यों के सापेक्ष प्रस्तुत किया। इस सब का व्यापक स्वागत विद्वत् समाज में भारत में और विदेशों में हुआ। कई देशी और विदेशी विश्वविद्यालयों में इस पुस्तक को पाठ्यक्रम में सम्मिलित भी किया गया।

इस पुस्तक का द्वितीय परिवर्धित संस्करण २००० ई. में D. K. Printworld (P) Ltd., Sri Kunj, F-52, Bali Nagar, New Delhi-110015 से प्रकाशित हुआ। विगत ३० वर्षों में हुए शोध अध्ययन को इसमें समाहित कर लिया गया। Appendix III में इस अभिलेख से संबंधित कतिपय बिन्दुओं पर अतिरिक्त प्रकाश डाला गया। Section III में प्राकृत भाषा और भारतीय लिपियों पर विशेष अध्ययन दिया गया।

दोनों ही संस्करणों में परिशिष्ट में नागरी लिपि में लेख का मूल पाठ और उसका हिन्दी रूपान्तर भी दे दिया गया। यह विशेषकर जैन विद्वानों की जिज्ञासा को उत्प्रेरित करने के उद्देश्य से किया गया था।

शोधादर्श वर्ष २००० ई. के अंक ४०, ४१ व ४२ में इस पुस्तक और विषय की प्रभूत चर्चा हुई है। **शोधादर्श** २६ और ३६ में भी विषय से सम्बंधित चर्चा है।

तदपि यह खेद का विषय है कि जैन विद्वत् समुदाय ने, चाहे वे दिगम्बर आम्नाय के हों अथवा श्वेताम्बर आम्नाय के, इस अध्ययन को अनदेखा करना ही उचित समझा। पूज्य आचार्यों के आशीर्वाद अथवा आम्नाय-पोषण के व्यामोह में कुछ मिथक अवश्य उद्घाटित करने का उनका सत्प्रयास रहा।

इस संदर्भ में **'श्रुत संवर्धिनी'** पत्रिका के मार्च २००५ ई. के अंक में प्रकाशित प्रो. डॉ. भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु' का लेख **"प्राचीनाअभिलेखा : सम्राट् खारवेलस्य हाथीगुम्फाऽभिलेखः"** और उसी पत्रिका के अप्रैल २००५ ई. के अंक में पुनः

"खारवेल महाप्रशस्ति स्थान" शीर्षक लेख दृष्टव्य हैं। उसी पत्रिका के जून २००५ ई. के अंक में प्रो. डॉ. लालचन्द जैन ('एल.सी. जैन' जो गलती से 'एम. सी. जैन' मुद्रित हो गया है) का लेख **'मुनि खारवेल'** और पुनः जुलाई के अंक में **'महाविजयी राजा श्री खारवेल'** भी दृष्टव्य हैं। **'प्राचीन तीर्थ जीर्णोद्धार'** पत्रिका के मई २००५ ई. के अंक में **'खारवेल का समय'** शीर्षक लेख प्रकाशित है जिसमें यद्यपि लेखक का नाम नहीं दिया गया है, वह विद्वान सम्पादक प्रो. डॉ. भागचन्द्र जैन 'भास्कर' की लेखनी से निःसृत प्रतीत होता है। इन तीनों विद्वान मनीषियों को मेरी पुस्तक का ज्ञान रहा प्रतीत होता है परन्तु उन्होंने अपनी प्रस्तुति में उक्त पुस्तक में विवेचित विषय-वस्तु को उपेक्षित करना ही श्रेयस्कर समझा।

मेरा आशय यहाँ उनकी प्रस्तुति की समीक्षा करना नहीं है, मात्र कुछ भ्रान्तियों को इंगित करना है —

१. प्रो. लाल चन्द जैन का यह कथन सही नहीं है कि 'चोयठ' का अर्थ '४+८=१२' मैंने आचार्य श्री विद्यानन्द जी के अनुकरण में किया है। यह विवेचन मेरी पुस्तक के १९७१ ई. के संस्करण में प्रकाशित है और उस समय तक, जहाँ तक मेरी जानकारी है, आचार्य श्री की जिज्ञासा खारवेल में या उसके अभिलेख में जागृत नहीं हुई थी। इस ओर उनका ध्यान संभवतया १९९० ई. के दशक में आकृष्ट हुआ।

२. प्रो. भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु' और प्रो. लाल चंद जैन ने हाथीगुम्फा अभिलेख के आधार पर ही खारवेल को 'राजा खारवेल' से 'मुनि खारवेल' बना दिया। यह अभिलेख एक प्रज्ञापन लेख (Public Notification) है और उसकी अंतिम पंक्ति में इसके प्रख्यापक का नाम स्पष्ट रूप से अन्त में 'राजा खारवेल-सिरि' दिया हुआ है।

३. अभिलेख की भाषा 'प्राचीन शौरसेनी या जैन शौरसेनी' प्राकृत नहीं है वरन् यह शिलालेखीय प्राकृत है जो अशोक के अभिलेखों की प्राकृत से व्युत्पन्न है। यह मौर्य कालीन राजभाषा (Official Language) के निरन्तर-क्रम (continuation) में थी।

४. 'कलिंग जिन' को 'आदि जिन भगवान' की मूर्ति कहने का कोई आधार नहीं है। इस मूर्ति का खारवेल के द्वारा मगध से वापस ले जाने का अभिलेख में कोई उल्लेख नहीं है।

५. अभिलेख में वर्ष १०३, वर्ष ११३ और वर्ष १६५ का उल्लेख है। ये किस संवत् में हैं, इसका विशद विवेचन हमने अपनी पुस्तक में किया है। सम्पूर्ण ऐतिहासिक परिदृश्य को दृष्टिगत रखते हुए ये वर्ष महावीर निर्वाण संवत् में ही रहे सूचित होते हैं। डॉ. 'भास्कर' के इस मत से कि 'इसके लिए कोई प्रमाण नहीं है कि महावीर तीर्थंकर का कोई संवत् था', हमें सुखद आश्चर्य हुआ।

६. बिना कोई आधार दिये डॉ. 'भागेन्दु' ने खारवेल का समय प्रथम शती ईस्वी पूर्व सूचित किया है और डॉ. 'भास्कर' ने ई.पू. १५०-१३५ स्थिर किया है। हमारे विवेचन के अनुसार खारवेल का राज्यकाल ई. पू. १८५-१७२ होना चाहिये।

हमें बड़े संकोच और सन्ताप के साथ यह लिखना पड़ रहा है कि पूज्य आचार्य श्री के आशीर्वाद से उपरोक्त तीनों विद्वान मनीषियों ने जो परिकल्पनापूर्ण विशद विवेचन प्रस्तुत किया है उससे पुनः हम १६वीं शती के पूर्व के अन्ध-युग की ओर प्रवृत्त होंगे जब हम अपनी लिपि, भाषा और इतिहास को भूल चुके थे और कुछ पौराणिक मिथकों को ही इतिहास मान रहे थे। हम यह भी निवेदन करना चाहेंगे कि हम भारत के प्राचीन इतिहास, अभिलेखों और पुरा-सम्पदा के एक सामान्य शोधार्थी हैं, कोई आम्नायपरक प्रचारक विद्वान नहीं हैं जैसा कि डॉ. लाल चन्द जैन जी के हमारे लिए प्रयुक्त 'दिगम्बर विद्वान' सम्बोधन से भ्रम होता है।

खारवेल के सम्बन्ध में तथ्यपरक जानकारी के लिये उनके हाथीगुम्फा अभिलेख के मूलपाठ की नागरी लिपि में अनुकृति, और उसका हिन्दी रूपान्तर अपनी पुस्तक के २००० ई. के द्वितीय संस्करण के Appendix I और II (पृ. १११-११३ और पृ. ११५-११७) से उद्धृत कर नीचे दे रहे हैं ताकि इस विषय में भ्रम निवारण हो सके।

खारवेल के हाथीगुम्फा लेख के संशोधित पाठ की नागरी लिपि में अनुकृति

{उन भग्नांशों के पाठ जो पढ़े जा सकते हैं (   ) में दिये गये हैं तथा उन भग्नांशों के संभावित एवं प्रस्तावित पाठ जो मिट चुके हैं [   ] में दिये गये हैं।}

पंक्ति १. नमो अरहंतानं (।) नमो सव-सिधानं (।।) ऐरेन महाराजेन महामेघवाहनेन चेति-राजव (-) स-वधनेन पसथ-सुभ-लखनेन चतुरंत-लुठण- गुण-उपेतेन कलिंगाधिपतिना सिरि-खारवेलेन

२. पंदरस-वसानि सिरि-कडार-सरीर-वता कीडिता कुमार-कीडिका (।) ततो लेख-रूप-गणना-ववहार-विधि-विसारदेन सव-विजावदातेन नव-वसानि योवरज (-) पसासितं (।) संपुण-चतुवीसति-वसो तदानि वधमानसेस-योवनाभिविजयो ततिये-

३. कलिंग-राजवंसे-पुरिसयुगे महाराजाभिसेचनं पापुनाति (।) अभिसितमतो च पधमे वसे वात-विहत-गोपुर-पाकार-निवेसनं पटिसंखारयति कलिंग-नगरि-खिबीरं सितल-तडाग-पाडियो च बंधायति सवूयान-पटिसंथपनं च

४. कारयति पनतीसाहि-सत-सहसेहि (,) पकतियो च रंजयति (।) दुतिये च वसे अचितयिता सातकंनिं पछिम-दिसं हय-गज-नर-रध बहुलं-दंडं पठापयति कंहबेंना-गताय च सेनाय वितासिति असिक-नगरं (।) ततिये पुन वसे

५. गंधव-वेद-बुधो दप-नत-गीत-वादित- संदंसनाहि उसव-समाज-कारापनाहि च कीडपयति नगरिं (।) तथा चवुथे वसे विजाधराधिवासं अहत-पुव-कलिंग पुवराज (ि) नव (े) (ि) स (ि) त..... वितध-मकुट-सबिल (धि)ते च निखित-छत-

६. भिंगारे हित-रतन-सापतेये सब-रठिक-भोजके पादे वंदापयति (।) पंचमे च दानी वसे नंदराज-ति-वसस‌त-ओघाटितं तनुसुलियवाटा-पणाडिं नगरं पवेसयति स..(।) अभिसितो च [छठे वसे] राजसेयं-संदसयंतो सवकर-वण-

७. अनुगह-अनेकानि सत-सहसानि विसजति पोर-जानपदं (।) सतमे च वसे पसासतो वजिरघरवति-घुसित-घरिनि* स (ा) मतुक-पद पुंन[ा]दया त पा[पुनाति] (।) अठमे च वसे महता-सेनाय (अपति) हत-(भि)ति-गोरधगिरिं

८. घातापयिता राजगह-नप (-) पीडपयति (।) एतिनं च कंमपदान-पनादेन संबित-सेनवाहने विपमु (-) चितु मधुरं अपयातो यमना- [नदीं] ... [सवर-राजान च]... (गछति)। पलवभार-

९. कपरुख-हय-गज-रध-सह यंते सव-घरावास (ी)-पूजि [त] - ठ ( ) [प]- [पूजा]य सव-गहनं च कारयितुं बमणानं जातिं परिहारं ददाति (,) अरहत च [पूजति (।) नवमे च वसे] सुविजय

---

* अथवा, "वजिरघर-खतिय (ा)-स (ि) त- घरिनि"

१०. ते उभय-प्राची-तटे राज-निवासं महाविजय-पासादं कारयति अठतिसाय-सत-सहसेहि (।) दसमे च वसे दंड-संधी-सा(म)मयो भरदवस-पठानं मह (ि)-जयनं.......कारापयति (।) [एकदसमे च वसे] प(ा) यातानं मनि-रतनानि-सह याति

११. [दखिन दिसं] (मंदं) च अव-राज-निवेसितं पिथुडं गदभ-नगलेन कासयति (,) जनपद-भावनं च तेरस-वस-सत-कतं भिंदति तमिर-दह-संघातं (।) बारसमे च वसे...स(ह)सेहि वितासयतो उतरापध-राजानो-

१२. .....मागधानं च विपुलं भयं जनेतो हथसं गंगाय पाययति (,) मागध (-) च राजानं बह(स)तिमितं पादे वंदापयति (,) नंदराज-नीतं च कालिंग-जिनं संनिवेस (ˆ) [पूजयति] (,) [कोसात] (गह)-रत (नाि) न पडीहारेहि अंग-मगध-वसुं च नेयाति (।)

१३. ....क (ˋ) तु (-) जठर-लखिल-(गो) पुरानि-सिहरानि निवेसयति सत-विसिकानं परिहारेहि (।) अभुतमछरियं च हथि-नाव-नीतं परिहरति... हय-हथि-रतन-मानिको पंड-राजा (चेदानि अनेकानि) मुत-मणि-रतनानि आहरापयति इध सत-स[हसानि]

१४. [पंड-जनपद-वा]सिनो वसीकरोति (।) तेरसमे च वसे सुपवत-विजय-चके-कुमारी-पवते अरहते पखिण-संसितेहि काय-निसीदीयाय(ा) यापुजवकेहि राज-भतिन(ा) चिन-वतान(ा) वस-सितान(ा) पूजानुरत-उवासग-खारवेल-सिरिना जीव-देह-(सिरिता) परिखाता (।)

१५. [निर्मंतितेन राजा सिरि-खारवेलेन] सुकत-समण-सुविहितानं च सवदिसानं ञनिनं तपसि-इसिनं संघयनं अरहत-निसीदीया समीपे पाभारे वराकार-समुथापिताहि अनेक-योजनाहिताहि [पनतिसतेहि]...सिलाहि सिंहपथ-रञी-सिंघुलाय निसयानि (।)

१६. ...पटलके चतरे च वेडूरिय-गभे-थभे पतिठापयति (,) पानतरिय-सठ-सत-(व)सेहि मुखिय-कल-वोछिनं च चोयठ-अंगं संतिकं तुरियं उपादयति (।) खेम-राजा स वध-राजा स भिखु-राजा धम-राजा पसंतो सुनंतो अनुभवंतो कलाणानि (।)

१७. [पानतरिय-पनतिसत-वस।] गुण-विसेस-कुसलो सव-पासंड-पूजको सव-देवायतन-संखारकारको अपतिहत-चक-वाहन-बलो चक-धरो गुत-चको पवत-चको राजसि-वंस-कुल-विनिशितो महाविजयो राजा खारवेल-सिरि (।)

हाथीगुम्फा लेख के संशोधित पाठ का हिन्दी रूपान्तर

{कोष्ठक में ( ) पूरक शब्द हैं और [ ] में संभावित पाठों के अर्थ हैं।}

"अरहंतो को नमस्कार हो।

सब सिद्धों को नमस्कार हो।।

कलिंग के अधिपति, चेति राजवंश की कीर्ति को बढ़ाने वाले, प्रशस्त शुभ लक्षणों से भूषित और चारों दिगन्तों में विख्यात गुणों से अलंकृत आर्य महाराज महामेघवाहन श्री खारवेल द्वारा पन्द्रह वर्ष तक, जबकि उनका शरीर सुन्दर और कडार वर्ण का था, राजकुमारों के उपयुक्त क्रीड़ायें की गई।

तत्पश्चात् राजकीय लेख पद्धति, मुद्रा शास्त्र, लेखा शास्त्र, प्रशासकीय नियमों और अधिनियमों में निष्णात होकर और विद्या के सभी अंगों का ज्ञान प्राप्त करके उनके द्वारा नौ वर्ष तक युवराज के पद से शासन किया गया।

तब चौबीस वर्ष की अवस्था पूर्ण करने पर कलिंग के राजवंश की तीसरी पीढ़ी में, वे अपना महाराज्याभिषेक कराते हैं ताकि अपने शेष यौवन को विजयों द्वारा समृद्ध कर सकें।

और राज्याभिषेक होने के बाद प्रथम वर्ष में पैंतीस लाख (मुद्रा) व्यय करके वह कलिंग की राजधानी में तूफान से क्षतिग्रस्त गोपुरों, प्राकारों और निवासों की मरम्मत कराते हैं, शीतल तड़ाग के बांध को सुदृढ़ कराते हैं और सब ही उद्यानों का प्रति-संस्थापन कराते हैं, और प्रजा का रंजन करते हैं।

और द्वितीय वर्ष में शातकर्णि की चिन्ता न करके वह अश्वारोही, हाथी, पदाति और रथ से समन्वित विपुल सैन्य पश्चिम दिशा में पठाते हैं और सेना के कृष्णवेणा नदी पर पहुंच जाने पर असिकों की राजधानी को त्रस्त करते हैं।

फिर तृतीय वर्ष में गंधर्व विद्या में प्रबुद्ध वह लोक-नृत्य, शास्त्रीय नृत्य, सुगम संगीत और वाद्य संगीत के कार्यक्रम कराके और विविध उत्सव और मेले कराके नगरवासियों का मनोविनोद करते हैं।

एवं चतुर्थ वर्ष में वह विद्याधरों के आवास (=विंध्याचल) में, जिसे कलिंग का कोई भूतपूर्व राजा आहत न कर सका था, निवास करते हैं और सभी रठिकों और भोजकों से जिनके मुकुट और अलंकृत अश्व नष्ट कर दिये गये, छत्र और भृंगार निक्षिप्त कर दिये गये और रत्न एवं धन अपहृत कर लिये गये, अपने चरणों की वंदना कराते हैं।

और पंचम शुभ वर्ष में १०३वें वर्ष में राजा नन्द द्वारा उद्घाटित तनसुलियवाटा-प्रणाली (नहर) को....सहस्र (मुद्रा) व्यय करके वह राजधानी में प्रवेश कराते हैं।

तथा राज्याभिषेक के छठे वर्ष में राज्य के ऐश्वर्य के प्रदर्शन हेतु वह सभी राज्य कर माफ कर देते हैं और नगर एवं ग्राम निवासियों पर लाखों मुद्राओं के मूल्य के अनेकों अनुग्रह विसर्जित करते हैं।

और जब वह सप्तम वर्ष में शासन कर रहे थे तो [पुण्य के उदय से] उनकी वजिरघरवती नाम की ग्रहिणी ने माता का पद प्राप्त किया।

एवं अष्टम वर्ष में अप्रतिहत भित्ति वाले गोरथगिरि का घात करके राजगृह के राजा को वह पीड़ा पहुंचाते हैं। और इस पराक्रम के कार्य की परम्परा में मथुरा को विमुक्त कराते हुए वह अपने सैन्य-वाहन सहित....यमुना [नदी] पहुँच जाते हैं। [तथा सभी अधीनस्थ राजाओं के साथ] पल्लवभार से युक्त कल्पवृक्ष, अश्वसैन्य, गज-सैन्य और रथ-सैन्य के साथ वह सब गृहस्थों द्वारा [पूजित स्तूप की पूजा करने के लिए] जाते हैं एवं सर्वग्रहण अनुष्ठान करने के लिए ब्राह्मणों की जाति को दान देते हैं, और अरहंत की [पूजा करते हैं] ।

[तथा नवम वर्ष में] इस उत्तम विजय की (स्मृति हेतु) प्राची नदी के दोनों तटों पर वह महाविजय-प्रासाद नाम के राजमहल का अड़तीस लाख (मुद्रा) की लागत से निर्माण कराते हैं।

और दसवें वर्ष में दंड और संधि के स्वामी वह सम्पूर्ण पृथ्वी की विजय हेतु भारतवर्ष में प्रस्थान के लिए (तैयारी) कराते हैं।

[एवं ग्यारहवें वर्ष में] वह मणि और रत्नों के साथ [दक्षिण दिशा में] मंदगति से प्रयाण करते हैं और अव (आन्ध्र ?) राजाओं के निवास पिथुंड नगर में गदहों के हल चलवाते हैं, तथा अपने राज्य के कल्याण की दृष्टि से ११३वें वर्ष में बने तमिल देशों के संघ को भेदते हैं।

और बारहवें वर्ष में सहस्रों (वीरों की सेना के साथ) [उत्तर की ओर प्रयाण करते हुए] वह उत्तरापथ के राजाओं को त्रस्त करते हैं और मगध वासियों के हृदय में विपुल भय पैदा करते हुए अपने हाथियों और घोड़ों को गंगा में पानी पिलाते हैं, तथा मगध के राजा वृहस्पतिमित्र से अपने चरणों की वंदना कराते हैं, नंद-राज द्वारा कलिंग से लायी गयी जिनेन्द्र की प्रतिमा की मन्दिर [में पूजा करते हैं, और राज कोष

से] गृह-रत्नों का अपहरण करके अंग और मगध का धन ले आते हैं। [वापस लौटने पर] दो सहस्र (मुद्रा) व्यय करके वह गोपुरों के सभी सुदृढ़ शिखरों पर केतु लगवाते हैं और अद्भुत आश्चर्य का विषय है कि हाथी-सैन्य और नाव-सैन्य भेजकर वह पांड्य राजा के घोड़े, हाथी, रत्न और माणिक्य.... ले लेते हैं और वहाँ लाखों के मूल्य के अनेक मुक्ता, मणि और रत्नों का भी अपहरण करते हैं एवं [पांड्य जनपद के निवासियों को] वश में करते हैं।

तथा तेरहवें वर्ष में राजसी भक्त जिसने व्रतों का पालन किया है, जो दैवी शक्ति से सम्पन्न है और जिसका पूजा में अनुराग है ऐसे उपासक श्री खारवेल द्वारा, जिनका जीव अभी देहाश्रित है, विजय मंडल में स्थित कुमारी पर्वत नामक शुभ पर्वत पर पूजा के हेतु संसारमुक्त अरहंतों की काय-निषिद्या का उत्खनन कराया गया।

[राजा श्री खारवेल के आमंत्रण पर] सब दिशाओं से आने वाले सुकृत और सुविहित श्रमण, ज्ञानी, तपस्वी-ऋषि और सभी संघों के नेता [जिनकी संख्या ३५०० थी] , सिंहपथ वाली रानी सिंधुला की निसिया के पास शिला पर पर्वत शिखर पर अरहंत की निषिद्या के समीप वराकार में [एकत्र होते हैं]।

और [सभामण्डप के सामने] वह (अर्थात् खारवेल) वैडूर्य गर्भित चौमुखे स्तंभ की प्रतिष्ठा कराते हैं, एवं १६५वें वर्ष से व्युच्छिन्न होती हुई मुख्य ध्वनि के शान्तिदायी द्वादश अंगों का शीघ्र पाठ कराते हैं। ऐसे क्षमाशील, बुद्धिमान, भिक्षुवृत्ति और धार्मिक राजा कल्याणों (=कल्याणकारी श्रुत) से संबंधित प्रश्न करते हैं, उनका श्रवण करते हैं और उनका मनन करते हैं।

[३५५वाँ वर्ष।] विशेष गुणों में कुशल, सब धर्मों को पूजने वाले, सब देवमन्दिरों का संस्कार करने वाले, अप्रतिहत चक्रवाहिनी के स्वामी, विजयचक्र के धारण करने वाले, राज्य के रक्षक, प्रवृत्तचक्र के स्वामी, राजवंशों और कुलों के आश्रय, महाविजयी, राजा श्री खारवेल।।"

- ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ - २२६००४

जय वीतराग सर्वज्ञ प्रभो, निज ध्यान लीन गुणमय अपार।
अष्टादश दोष रहित जिनवर, **अर्हंत** देव को नमस्कार।।
अविकल अविकारी अविनाशी, निजरूप निरंजन निराकार।
जय अजर अमर हे मुक्तिकंत भगवंत **सिद्ध** को नमस्कार।।

- पं. राजमल पवैया, भोपाल, द्वारा रचित 'श्री पंच परमेष्ठी पूजन' से

दिगम्बरत्व की मर्यादा

- डॉ. अनंग प्रद्युम्न कुमार

(प्रस्तुत लेख में 'दिगम्बरत्व की मर्यादा' के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करने वाले डॉ. अनंग प्रद्युम्न कुमार प्रबुद्ध चिन्तक एवं विद्वान् लेखक होने के साथ ही एक निष्ठावान, परन्तु प्रबुद्ध आग्रह के साथ, दिगम्बर जैन आम्नाय के अनुयायी हैं। -सम्पादक)

शोधादर्श के मार्च २००५ के अंक में महात्मा गांधी का एक आलेख **'दिगम्बरत्व की मर्यादा'** शीर्षक से छपा है। यह आलेख, मैं समझता हूँ, सभी विचारशील पाठकों को सोचने के लिए बेचैन करेगा। मैं भी ऐसी ही समस्याओं और जैन साधना के व्यावहारिक पहलुओं से दो-चार होता रहा हूँ। कुछ वर्ष पूर्व दिगम्बराचार्य श्रीपुष्पदंन्तसागरजी महाराज ससंघ रूद्रपुर में पधारे और यहां के नवनिर्मित जैन मंदिर में ठहरे थे। मैंने आचार्यश्री से कतिपय बिन्दुओं पर चर्चा की थी। बिन्दु थे-

१. क्या दिगम्बर साधु चर्या में बदले हुए देश-काल-परिस्थिति के मद्देनज़र कुछ संशोधन नहीं होना चाहिए? उन्होंने कहा- "क्या?" मैंने निवेदन किया-"संशोधन दिगम्बरत्व के सम्बंध में; दिगम्बर मुनि आहार और विहार के समय एक वस्त्र स्वीकार कर लें।"

उन्होंने इस विकल्प को सिरे से खारिज कर दिया। अन्य संशोधनों के बारे में भी उनका प्रतिप्रश्न था-"आखिर **मूलाचार** में संशोधन कौन कर सकता है?" मैंने निवेदन किया-"*क्या आप जैसे आचार्यगण भी नहीं कर सकते?*" तो उनका दो टूक उत्तर था-"**मूलाचार** में संशोधन करने का अधिकार किसी आचार्य को प्राप्त नहीं है।" इसके बाद मैं खामोश हो गया।

२. फिर मैंने दूसरा प्रश्न कुरेदा-"क्या दिगम्बर परम्परा ने श्वेताम्बर परम्परा में मान्य आगम-साहित्य को सर्वांगतः खारिज कर बुद्धिमानी की? क्योंकि मैं अपने स्वाध्याय के आधार पर कह सकता हूँ कि सारा आगम साहित्य त्याज्य नहीं है। उस में शुद्ध जैनत्व के दर्शन भी काफी अधिक होते हैं, जैसे **आचारांग प्रथम श्रुतस्कंध, उत्तराध्ययन सूत्र, भगवती सूत्र** आदि अधिकांशतः निष्पक्ष जैन ग्रंथ हैं। भले ही उनके आम्नायगत भाष्य और व्याख्या हम न स्वीकारें।" इस पर वह खामोश हो गए, यानी आचार्यश्री ने श्वेताम्बर साहित्य के पठन-पाठन के औचित्य को स्वीकार नहीं किया।

इसी प्रकार से मेरी अन्य दिगम्बर साधुओं से बात हुई, तो मैंने प्रत्येक साधु की अभिवृत्ति में गैर-लचीलापन काफी अधिक मात्रा में पाया। तो प्रश्न है, महात्मा

गांधी के उक्त विचार या सुझाव का जैन चिंतन में क्या उपयोग हो सकता है? मेरा मत है-**मूलाचार** में दो तरह के मुनियों का उल्लेख है : १. जिनकल्पी मुनि २. स्थविरकल्पी मुनि। दोनों ही मुनि दिगम्बर होते हैं। किंतु मेरे विचार में स्थविरकल्पी मुनि के सम्बंध में दिगम्बर आम्नाय समय-समय पर छूट लेता रहा है। मुनिवेश में कभी एक फाल (वस्त्र) लिया गया, कभी अन्य उपाय से गुह्यांग को ढका गया। तब एक नया सम्प्रदाय खड़ा हो गया जिसका नाम था यापनीय सम्प्रदाय। लेकिन हां, कुन्दकुन्द आचार्य ने दिगम्बरत्व में किसी प्रकार की छूट का विरोध किया और कालांतर में यापनीय सम्प्रदाय निष्प्रभावी हो गया। इस निष्प्रभाव के कुछ ऐतिहासिक कारण भी बने। कारण थे-अनुदार बर्बर यवन म्लेच्छ जातियों के भारत पर निरंतर हमले। शक, हूण, कुषाण, फिर मुसलमान, सभी दिगम्बरत्व के घोर विरोधी और जालिम किस्म के शासक थे। इनके शासनकालों में दिगम्बर जैन मुनि संस्था एक तरह से निःशेष हो गई। अब स्वतन्त्रता के बाद मुनियों के पुनः दर्शन हो रहे हैं। समय बहुत बदल चुका है। चिंतन और मूल्यबोध भी बदला है। मेरे विचार से दिगम्बर मुनियों को पुरानी परम्परा से मुक्त होकर नये संदर्भों के अनुरूप चर्या में वांछित संशोधन करना चाहिए। अब तक के दीक्षित दिगम्बरवेषी मुनि आचार्य जिनकल्पी मुनि होकर मोक्ष-साधना के लक्ष्य से या तो स्थानकवासी होकर किसी एक जगह ठहर जायें या मुनियों की नयी पौध के साथ स्थविर कल्पी होकर आहार विहार के समय एक वस्त्र का चोगा धारण करें तो अच्छा है। यह लोचशीलता वर्तमान जैन संघ के लोकोपयागी भविष्य के लिए बहुत जरूरी है।

दूसरे प्रश्न के समाधान के लिए दिगम्बर परम्परा को श्वेताम्बरों के आगम साहित्य को अपने अनुसार शोधित कर अपना लेना चाहिए जिस प्रकार से श्वेताम्बरों ने **तत्वार्थधिगम सूत्र** (उमास्वातिकृत) को अपने अनुसार शोधित कर अपना लिया। ऐसा करना दिगम्बर परम्परा की उदारता और बड़प्पन का परिचायक होगा। फिर भी मैं समझता हूँ मेरा यह सुझाव तुरन्त ही आसानी से जैन जनमानस के गले नहीं उतरेगा। फिर भी मेरा नम्र अनुरोध है कि यदि हमें जैन मूल्यबोध को लोकप्रिय बनाना है तो जैन साधु-चर्या को खुले दिमाग़ से सोचकर हमें सामयिक संशोधनों के साथ स्वीकार करना चाहिए। यह समय की वाजिब मांग है।

- नेहांगन, ३२, अग्रसेन नगर,
किच्छा रोड, रुद्रपुर,
ऊधमसिंहनगर (उत्तरांचल) २६३१५३

नग्नत्व और मूलगुण : एक चिन्तन

- श्री जमनालाल जैन

[प्रस्तुत चिन्तन के प्रस्तोता सुप्रसिद्ध वयोवृद्ध विचारक श्री जमनालाल जी हैं जो स्वयं दिगम्बर जैन नैष्ठिक श्रावक हैं। - सम्पादक]

जैन धर्म के दिगम्बर आम्नाय के मुनि सर्वथा निर्वस्त्र, निर्ग्रन्थ अर्थात् नग्न रहते हैं। गर्मी, वर्षा और ठंड तीनों मौसमों में नग्नावस्था में ही विहार या विचरण करते हैं। कहा जाता है कि शोध के अनुसार नग्न शरीर पर पर्यावरण या वायुमंडल की एक ऐसी परत लग जाती है कि किसी भी मौसम का शरीर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। दिगम्बर जैन मुनियों के अतिरिक्त पूर्वी भारत में कुछ साधु भी नग्न रहते हैं और शरीर पर राख लपेटे रहते हैं। ये नागा कहलाते हैं और नागालैंड नामक एक प्रदेश भी है। ये नागा साधु कुम्भ मेले या स्नान पर्वों के समय ही दिखाई देते हैं- शहरों या सड़कों पर सामान्यतया विचरण करते नहीं दिखाई देते। जब हम दिगंबर जैन आम्नाय के मुनियों के नग्नत्व और उसकी उपयोगिता पर विचार करते हैं, तो अनेक प्रश्न और समस्याएँ सामने उपस्थित हो जाती हैं।

हमारे सिद्धान्त, परम्पराएँ और आचार्य चाहे जो कहें या कहा है, वह उनके समय की आवश्यकता अवश्य ही रही होगी। पर आज, भगवान् महावीर के पश्चात् यानी विगत ढाई हजार वर्षों में समाज हित की दृष्टि से नग्नत्व कितना उपयोगी और सार्थक रहा, यह विचारकों के लिए चिन्तन का विषय है।

जैन धर्म मूलतः निवृत्ति प्रधान है। उसका अपना निवृत्तिमूलक अध्यात्म और कर्म सिद्धांत हैं, जो वैदिक या हिन्दू धर्म की प्रवृत्तिमूलक परम्परा से भिन्न ही नहीं, बिल्कुल विपरीत है। जहाँ वैदिक परम्परा के ऋषि-मुनि जंगल में सपत्नीक रहते थे, गुरुकुल चलाते थे-एक प्रकार से प्रकृति प्रदत्त गार्हस्थिक जीवन जीते थे, वहीं जैन मुनि-चर्या सर्वथा नग्न तथा ब्रह्मचर्यमय यानी स्त्रीरहित रही। निर्ग्रन्थ मुनि के लिए किसी भी प्रकार का आरंभ या कर्म करना राग द्वेष माना गया और कर्म करना कर्म बंध का कारण या पाप माना गया।

प्रश्न उठता है कि क्या केवल निर्वस्त्र या नग्न रहने मात्र को आदर्श स्थिति कहा जा सकता है? हिंसा-अहिंसा या कर्म-बंध आदि की आधी-अधूरी, कल्पिता, भ्रमपूर्ण मान्यताओं या परम्पराओं का भय का भूत जब दिल-दिमाग पर छा जाता है तब सब प्रकार के दायित्वों से हटकर या पलायन करके, प्रवृत्ति शून्य बनकर कुछ भी न करने को सर्वोच्च शुद्धता मान लिया जाता है।

ऐसी स्थिति में यह प्रश्न भी उठता है कि देह के रहते क्या निर्ग्रन्थ मुनि सर्वथा प्रवृत्तिशून्य रह सकते हैं? क्या उनके शरीर में रोग या विकार उत्पन्न नहीं होते हैं? आहार-विहार भी करना ही होता है। विचार-विमर्श, चर्चा, उपदेश भी करते हैं, तब यह कैसे कहा जा सकता है कि वे कोई प्रवृत्ति या आरम्भ नहीं करते यानी उनके हाथों कोई कर्म नहीं होता।

समय की पुकार है कि निर्ग्रन्थ मुनियों को, जो सही अर्थों में ग्रंथि विहीन होते हैं, समाज से अस्पृश्य रहने की पलायनवादी प्रवृत्ति से हटकर विविध सामाजिक समस्याओं के निवारण में सहयोग देना चाहिये।

अब मुनि के मूलगुणों पर किंचित् विचार कर लिया जाय। मुनि के २८ मूलगुण माने गये हैं जो इस प्रकार हैं : महाव्रत ५, समिति ५, इन्द्रिय दमन ५, आवश्यक ६, तथा अन्य क्रियात्मक विधियाँ ७।

प्रश्न यह है कि दिगम्बर परम्परा में मान्य मुनि के जो २८ मूलगुण हैं, क्या वे सहज-स्वाभाविक हैं? जैसे मनुष्य की पाँचों इन्द्रियाँ सहज रूप से अपना कार्य करती हैं और उन पर किसी प्रकार का दबाव या तनाव नहीं पड़ता, परन्तु जब उनमें किसी तरह की गड़बड़ी, चोट, बीमारी आदि प्रकट होती है, तब पता चलता है कि हमारे शरीर में अमुक इन्द्रिय भी है। बारबार ध्यान उसी की ओर जाता है। इन इन्द्रियों का दमन कैसे किया जा सकता है? इनका केन्द्र तो मन या चित्त है। मन का संयम ही इन्द्रियों को भटकने या मटकने से रोक सकता है। इसके लिए सामायिक का विधान अवश्य है, पर फिर भी मन तो चंचल और अस्थिर रहना ही है। यदि अपने को किसी कर्म में यानी लेखन-पठन, कृषि, साफ-सफाई या कला, चित्रकारी, अध्यापन में लगा दिया जाय तो इन्द्रियाँ अपने आप शांत रह जाती हैं। तब पता ही नहीं चलता कि सामने या आगे-पीछे क्या हो रहा है। एक बार विनोबा जी अपने परिसर में हरियाली में से कंकर, घास-फूस बीन रहे थे। मैंने पूछा, 'बाबा, यह आप क्या कर रहे हैं ?' उनका जवाब था, 'मैं ध्यान कर रहा हूँ।' स्त्रियाँ आटा पीसने में, रसोई बनाने में, सिलाई आदि करने में इतनी तन्मय हो जाती हैं कि वे न कुछ सुन पाती हैं, न देख पाती हैं। लोगों का अनुभव है कि एकाग्रता का सबसे बड़ा और महत्त्वपूर्ण साधन चरखा है। एकाग्रता के बिना यानी मन की स्थिरता के बिना सूत काता ही नहीं जा सकता। हमारे विचार में तो इन्द्रिय दमन शब्द की जगह इन्द्रिय संयम ही अधिक उपयुक्त है।

यही बात महाव्रतों और समितियों के विषय में कही जा सकती है। बाह्यरूप में भी, जब साधक मुनि दीक्षा ले लेता है और नग्न विहार करता है, तब संपूर्णतया

अनिकेत, अपरिग्रही, सर्वसंघ परित्यागी की स्थिति में रहता है, तब हिंसा, असत्य, चोरी, परिग्रह या अब्रह्म से कौन सा सम्बन्ध रहता है ? तब तो वह सर्वथा व्रतातीत हो जाता है, व्रतों से ऊपर उठ जाता है। अतः लगता है कि उनको महाव्रती कहना केवल एक परम्परा मात्र है। ऐसी स्थिति में वे समितियों से भी परे यानी ऊपर उठ जाते हैं। उनमें सहज ही वाणी-संयम आ जाता है।

छह आवश्यक और सात अन्य गुण तो साम्प्रदायिक पद्धतियाँ या क्रियाएँ हैं जो मुनिचर्या के अंग मानी गयी हैं। ये तो अपने पंथ या सम्प्रदाय की पहचान की द्योतक हैं। इन क्रियाओं का, वास्तव में धर्म, साधना या अध्यात्म से कोई सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता। ऐसा लगता है कि आत्मा और मुक्ति के नाम पर शरीर को अनित्य, अशुचि, घृणा का गेह, अपावन मानने की शिक्षा का ही यह परिणाम है कि शरीर को अधिक से अधिक पीड़ा या क्लेश में रखा जाय, उसे सताया जाय, निरादर किया जाय। किसी अपेक्षा से इसमें तथ्य हो सकता है, पर इस विचार का परिणाम यह है कि साधु या साधक या श्रावक यह सोचने लगता है कि 'समाज या राष्ट्र से मेरा कोई प्रयोजन नहीं है।' वह तो बस 'मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ' या 'आप अकेला अवतरै' आदि रटते-रटते नितांत संकीर्ण, स्वार्थी बन जाता है। समझने की बात है कि मानव-तन तो प्रकृति का महान उपहार है, साधना का पवित्र स्थल या देवालय है। इसे निरन्तर स्वच्छ, सुन्दर रखा जाय, इससे राष्ट्र और समाज-हित के यथाशक्ति काम लिये जायें तो मुक्ति के लिए, कर्म निर्जरा के लिए पाँव-पाँव भटकने की, पलायन की आवश्यकता ही न रहे।

स्नान न करना, दाँत न धोना, केशलोंच करना, खड़े-खड़े हाथ में ही भोजन करना-ये ऐसी क्रियाएँ हैं जिनका धर्म या अध्यात्म से क्या संबंध हो सकता है यह अपनी समझ के परे है। कदाचित् अन्य पंथों या सम्प्रदायों से अपने को भिन्न बताने तथा उच्च साधना का दर्शन कराने के लिए ऐसी क्रियाओं को महत्त्व दिया गया है।

शुद्ध अध्यात्म की दृष्टि से तो बाह्य वेश या क्रियाओं का, विधि-विधानों का कोई महत्त्व नहीं है। जीवन-विकास की साधना तो आन्तरिक भावनाओं, व्यापक सद्भाव, समभाव, प्रेम-सौहार्दपूर्ण सामाजिक व्यवहार पर निर्भर है।

परमदार्शनिक स्वामी समन्तभद्राचार्य ने तो अपने **रत्नकरण्ड-श्रावकाचार** में स्पष्ट ही कह दिया है कि मोही मुनि से निर्मोही गृहस्थ श्रेष्ठ है। निवृत्ति और प्रवृत्ति के झमेले में न उलझकर खुले दिल से विचार करें तो समझ में आ सकता है कि घर-बार, परिवार तजकर काल्पनिक मोक्ष के लिए पलायन करने की अपेक्षा गृहस्थ जीवन की तपस्या का महत्व श्रेष्ठ है।

- अभय कुटीर, सारनाथ (वाराणसी)-२२१००७

जिनभक्त-ओखरिका द्वारा स्थापित वर्द्धमान प्रतिमा

- डॉ. शैलेन्द्र कुमार रस्तोगी

(प्रस्तुत लेख के लेखक डॉ. शैलेन्द्रकुमार रस्तोगी राज्य संग्रहालय लखनऊ और राजकीय संग्रहालय मथुरा से जुड़े रहे। उन्होंने रामकथा संग्रहालय अयोध्या के निदेशक पद से अवकाश प्राप्त किया है। प्रस्तुत लेख में उन्होंने जिन भक्त ओखरिका को विदेशी ललना प्रतिपादित किया है।

डॉ. शशिकांत के लेख में उल्लिखित अभिलेख सं. २६६ (३७७ ई.) का है और डॉ. रस्तोगी द्वारा प्रस्तुत लेख में उद्धृत मूर्ति लेख सं. ८४ (१६२ ई.) का है। २१५ वर्ष के अन्तराल पर प्राप्त इन दोनों अभिलेखों में 'ओखारिका' या 'ओखरिका' नाम का प्रयोग उल्लेखनीय है। यह ध्यातव्य है कि ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी से द्वितीय शती ईस्वी पर्यन्त पश्चिमोत्तर भारत में विदेशी यवन, पहलव, शक, भद्रचष्टन, कुषाण लोगों का काफी कुछ आधिपत्य और प्रभाव रहा। जहाँ ये विदेशी आक्रान्ता और अस्थायी राज्य संस्थापक भारतीय संस्कृति और धर्मों से प्रभावित हुए वहीं इनकी अपनी संस्कृति का प्रभाव भी भारतीय जनमानस से अछूता नहीं रह सका। यह स्वाभाविक ही था। जहाँ इन विदेशियों में से कई व्यक्तियों ने भारतीय नामों को अपनाया या अपने नाम का भारतीयकरण किया, वहीं भारतीयों ने भी उन विदेशियों में तत्समय प्रचलित नामों को अपनाने से परहेज नहीं किया। कदाचित् 'ओखारिका' या 'ओखरिका' नाम भी ऐसा ही है जो शताब्दियों तक भारत में महिलाओं में प्रचलन प्राप्त रहा। -सम्पादक)

शोधादर्श-५४ में भाई डॉ. शशि कान्त जी का "मथुरा से प्राप्त सं. २६६ का अभिलेख" शीर्षक से लेख प्रकाशित हुआ है। इसमें उल्लेख है कि ओखारिका की पुत्री उज्झतिका और ओखा ने महावीर की प्रतिमा संवत्सर २६६ अर्थात् ३७७ ई. में स्थापित करायी थी। प्राप्त प्रतिमा कायोत्सर्ग रही होगी क्योंकि चरण चौकी पर मात्र बाँये पैर का पंजा ही शेष है। चरण चौकी बिल्कुल सादी है मात्र लेख ही उत्कीर्णित है।[1]

राजकीय संग्रहालय मथुरा के विपुल संकलन में 'ओखरिका" लेख युत वर्द्धमान प्रतिमा भी संरक्षित है।[2] यह लाल चितीदार बलुए प्रस्तर पर तराशी (४६ से.मी.) ऊँची वर्द्धमान भगवान की पद्मासीन ध्यानस्थ मूर्ति थी। अधुना पलथी

और दाया हाथ का कुछ अंश और गोद में दोनों हाथों के भाग ही बचे हैं। इस प्रतिमा की चरण चौकी पर दोनों कोनों पर एक एक सिंह बने हैं। पादपीठ के मध्य स्तम्भ पर घूमा धर्मचक्र, दायें-बायें एक-एक गणधर नमस्कार मुद्रा में भूमि पर बैठे हैं। बायीं ओर पीछी लिए एक साध्वी है। तत्पश्चात् दो अन्य साध्वियाँ हाथ जोड़े खड़ी हैं (श्राविकाओं का अभाव है)। दायीं तरफ एक अर्द्धफालक जिसके बांये हाथ में वस्त्रखण्ड लटक रहा है, दायें में पीछी है। तदुपरांत दो श्रावक माला पकड़े खड़े हैं।

इसी चरण चौकी की ऊपर और नीचे की कोर पर कुषाण ब्राह्मी में संवत् ८४ का लेख तीन पंक्तियों में उत्कीर्ण है।

पंक्ति १ (.) ओ सिद्ध स ८०, ४ व उदिरव्एतम्भिपूर्व्वाय (अ) धमतस्य घि (तु) ओरव

पंक्ति २ रिकाये कुटुम्बिनिये दताये दानं वधमान प्रतिमा प्रतिस्थापिता

पंक्ति ३ गणतो कोहियातो [व]......

नीचे... र [य] सत्यसेनस [य] धर्म वृधिस्य नि (न्वत) ने...

अर्थात् ८४+७८=१६२ ई. में भी 'ओखरिका' नाम का उल्लेख प्राप्त होता है। यह नाम भारतीय न होकर विदेशी जान पड़ता है। क्योंकि चरणचौकियों पर लम्बी तरंगी साड़ी बांधे तीर्थंकर वंदना में हाथ जोड़े विदेशी ललनाओं (जे-२०) के अंकन मथुरा शिल्पियों द्वारा बनाए गये दृष्टिगोचर होते हैं। जैन साहित्य एवं कला के लब्धप्रतिष्ठ मर्मज्ञ विद्वान **डॉ. ज्योति प्रसाद** जैन ने भी इसे विदेशी माना है।[३]

- 'सपर्या', २२३/१०, रस्तोगी टोला, राजा बाजार, लखनऊ-२२६००३

सन्दर्भ -

१. राज्य संग्रहालय लखनऊ संख्यक जे-२

२. राजकीय संग्रहालय मथुरा संख्यक १४.४६०

३. जैन ज्योति प्रसाद, 'मथुरा के जैन शिला लेख' जैन संदेश शोधांक २१ (२० मई, १९६५) पृ.६।

भवार्णवे जन्तुसमूहमेनमाकर्षयामास हि धर्म-पोतात्।
मज्जन्तमुद्वीक्ष्य य एनसापि, श्रीवर्द्धमानं प्रणमाम्यहंतम्।।

अज्ञातकर्तृक ***'स्वयम्भू स्तोत्र'*** से

जैन संस्कृति की प्राचीन धरोहर
कंकाली टीला (मथुरा)

- श्री सुरेशचन्द जैन बारौलिया

मथुरा में आयागपट, तोरणद्वार, वेदिका स्तंभ, द्वार स्तंभ आदि बहुत से पुरावशेष मिले हैं जिनमें आयागपट विशेष उल्लेखनीय हैं। आयागपट में अष्टमंगल बहुत ही सुन्दर ढंग से चित्रित हैं। शुंगकाल से लेकर गुप्तकाल तक इतनी विपुल जैन सामग्री अन्यत्र उपलब्ध नहीं हुई है। प्रथम शती से पाचवीं शती तक का काल मथुरा की मूर्तिकला का स्वर्ण युग था। महान आत्माओं की स्मृति में राजाओं, धनी व्यापारियों एवं जनसामान्य ने अपनी श्रद्धा एवं सामर्थ्य के अनुसार मथुरा के आस-पास अनेक स्मारक, स्तूप, चैत्य-मठ आदि के निर्माण कराये। कालान्तर में बर्बर विदेशी आक्रमणों से प्राचीन भवन ध्वस्त होकर टीले के रूप में परिणत हो गये। इसमें मथुरा का कंकाली टीला भारत के प्रसिद्ध पुरातात्विक स्थलों में माना जाता है। केन्द्रीय पुरातत्त्व विभाग की विज्ञप्ति संख्या ७०६ एम.एस ११० एम.एस. १९२७, दिनांक २७ अगस्त, १९२८ द्वारा यह संरक्षित स्थान घोषित कर दिया गया। सूची में इसकी क्रम संख्या ३२५ है। वर्तमान में कंकाली नाम की देवी का छोटा सा मंदिर होने से इसे कंकाली टीला बोलते हैं। इस टीले को प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ. विन्सेन्ट स्मिथ ने ५००' लम्बा और ३५०' चौड़ा बताया है, किन्तु कनिंघम ने इसकी लम्बाई-चौड़ाई क्रमशः ४००' एवं ३००' दर्शाई है। इसके उत्खनन में ४७' व्यास की ईंटों का स्तूप और दो जैन मंदिर मिले हैं। किन्तु खुदाई के पूरे नक्शे आदि उपलब्ध नहीं हैं। कंकाली स्तूप का पुरातात्विक- सांस्कृतिक व धार्मिक महत्व इसलिए अधिक है क्योंकि यह एकमात्र उपलब्ध जैन स्तूप है।

इस स्थान की कीर्ति का प्रधान कारण देव निर्मित जैन स्तूप का निर्माण है। **वृहतकल्पभाष्य** से इसके महत्व को आंका जा सकता हे। देव निर्मित स्तूप के स्वामित्व के विषय में बौद्ध धर्म तथा जैन धर्म के अनुयानियों में कुछ संघर्ष भी हुआ बताया जाता है, किन्तु अन्त में जैनों का अधिकार स्थिर हुआ। कहा जाता है कि दो जैन आचार्यों ने मथुरा में भूतरमण नामक स्थान पर विहार किया था, उनकी साधना से

(शेष पृष्ठ ३० पर)

जैन महिलाओं का धार्मिक विश्वास

-श्रीमती अनुभूति

प्राचीनकाल से ही नारी को गृहस्थ की संचालिका और पुरुषों को जीविका उपार्जन का प्रमुख माध्यम बताया गया है। भारतीय समाज में घर; परिवार आदि के धार्मिक संस्कारों में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की अधिक भागीदारी रहती है। जैन महिलाओं के धार्मिक विश्वासों को जानने के उद्देश्य से एक सर्वेक्षण किया गया जिससे यह ज्ञात किया जा सके कि वर्तमान पाश्चात्य संस्कृति के प्रभावों के बावजूद वह किस सीमा तक जैन-धर्मावलम्बियों द्वारा बनाए गए सिद्धांतों का पालन कर पा रही हैं।

प्रस्तुत अध्ययन में ३० जैन महिलाओं का साक्षात्कार लिया गया है। जैन महिलाओं से लिए गये साक्षात्कार में मुख्य रूप से यह पूछा गया था कि वे अपने आपको हिंदू समाज का अंग मानती हैं या नहीं; वे मंदिर जाती हैं और मंदिर जाने की आवृत्ति क्या है; वे हिंदू-धर्म के व्रत, पर्व, त्योहार करती हैं या जैन-धर्म के या दोनों धर्मों के; उनकी पूजन-पद्धति क्या है और क्या उन्हें धार्मिक प्रवचन सुनना पसंद है। किए गए सर्वेक्षण के अनुसार जो आंकड़े प्राप्त हुए वे इस प्रकार हैं- ९० प्रतिशत महिलाएं दिगंबर जैन समाज से संबंधित थीं और १० प्रतिशत महिलाएं श्वेतांबर जैन समाज को मानने वाली थीं। सर्वेक्षण में सम्मिलित ८० प्रतिशत महिलाओं का केवल जैन-धर्म के देवी-देवताओं में विश्वास है, २० प्रतिशत महिलाओं का हिंदू एवं जैन-धर्म दोनों ही धर्मों के देवी-देवताओं पर विश्वास है। सभी १०० प्रतिशत महिलाएं जैन मंदिर जाती हैं और जैन मंदिर जाने की आवृत्ति का कोई नियम नहीं है, जब मन होता है तब जाती हैं। सर्वेक्षण में सम्मिलित ६० प्रतिशत महिलाएं अपने परिवार के सदस्यों का विवाह केवल जैन-धर्म के अनुयायियों में ही करना चाहती हैं, ४० प्रतिशत महिलाएं हिंदू-धर्म में वैश्य जाति के परिवारों और जैन धर्मानुयायी परिवारों दोनों में ही विवाह कर सकती हैं, परंतु प्राथमिकता वे जैन धर्मानुयायी को ही देंगी। ८० प्रतिशत महिलाएं जैन-धर्म के प्रमुख व्रत अनंत चतुर्दशी को करती हैं तथा २० प्रतिशता महिलाएं जैन-धर्म और हिंदू-धर्म दोनों के ही पर्व, व्रत व त्योहार मनाती हैं। सभी १०० प्रतिशत महिलाएं धार्मिक प्रवचन सुनती हैं, जिनमें से ८० प्रतिशत महिलाएं सभी प्रकार के मन को भाने वाले प्रवचन सुनती हैं और २० प्रतिशत महिलाएं केवल

जैन मुनियों के द्वारा दिए गए प्रवचनों को सुनना पसंद करती हैं। सर्वेक्षण में सम्मिलित ६० प्रतिशत महिलाएं शहर में आने वाले जैन मुनियों के द्वारा किए गए सत्संगों में शामिल होकर प्रवचन सुनती हैं और २० प्रतिशत महिलाएं टी.वी., कैसेट के माध्यम से प्रवचन सुनती हैं तथा २० प्रतिशत महिलाएं प्रतिदिन होने वाले सत्संगों में जाकर धार्मिक प्रवचन सुनती हैं।

इस प्रकार सर्वेक्षण में प्राप्त आंकड़ों का आकलन करें तो हमें ज्ञात होगा कि सर्वेक्षण में सम्मिलित सभी महिलाएं बहुत धार्मिक हैं, परंतु वर्तमान भौतिकतावादी युग में वे स्वयं को परिस्थितियों और वातावरण के अनुसार परिवर्तित करना चाहती हैं। वर्तमान समय में जैन-धर्म की अनुयायी महिलाएं स्वयं को हिंदू समाज का अंग मानती हैं, परंतु यदि उन्हें अपने परिवार के सदस्यों का विवाह करना हो तो वह प्रथम मान्यता जैन परिवारों को देंगी। सर्वेक्षण में यह भी देखने को मिला कि वे पुत्र वधु तो जैन परिवार से अलग लेना चाहेंगी, परंतु अपनी पुत्री को जैन-परिवार में ही देना चाहेंगी। सर्वेक्षण में यह ज्ञात हुआ कि सभी महिलाएं पूर्ण रूप से जैन-धर्म के धार्मिक संस्कारों का निर्वाह कर रही हैं और जैन-धर्म में उनका पूर्ण विश्वास है।

- बी-७४, सेक्टर-१२, नोएडा (उ.प्र.)

(शेष पृष्ठ २८ का)

कुबेरा नामक देवी बड़ी प्रसन्न हुई और जैन मुनियों की प्रेरणा से सोने का एक रत्न जड़ित स्तूप प्रकट (निर्मित) कर दिया जिसमें तीन वेदिका तीन छत्रों सहित थीं। और वह शिखर, तोरणमाला, जिनविम्ब, ध्वजा आदि मांगलिक चित्रों से युक्त था। इसमें मुख्य मूर्ति सुपार्श्वनाथ तीर्थंकर की थी। इस प्रकार कालांतर के ग्रन्थों में जैन संघ की मथुरा यात्रा, सुपार्श्वनाथ का स्तूप तथा अन्य देव स्थानों का वर्णन मिलता है। मान्यता यह है कि सर्वप्रथम एक स्तूप था। कालांतर में उसकी संख्या पाँच हुई। तदनन्तर छोटे-छोटे ५२७ स्तूप बन गये जिनकी पूजा सत्रहवीं शताब्दी तक होती रही। १५८३ ई. में साहु टोडरमल द्वारा ५१४ स्तूपों की प्रतिष्ठा की गई थी तथा इससे पूर्व नौवीं शती ईस्वी में एक पार्श्वनाथ जिनालय स्थापित हो चुका था तथा एक मूर्ति भगवान महावीर की भी स्थापित की जा चुकी थी। ये सब कार्य देव निर्मित स्तूप कंकाली टीला तथा मथुरा चौरासी के आस-पास सम्पन्न हुए होंगे।

- बी-६७७, कमलानगर, आगरा

शाकाहार-एक जीवन्त आहार

- डॉ. चीरंजीलाल बगड़ा

शाकाहार एक स्वाभाविक एवम् प्राकृतिक जीवन-शैली का नाम है। मनुष्य के मूल अस्तित्व के साथ इसका सदैव से जुड़ाव रहा है। जीवाश्म विज्ञानी डॉ. एलन वॉकर (मैरीलैंड जान हापकिंस विश्वविद्यालय) की वर्षों की खोज का निष्कर्ष है कि मनुष्य का अस्तित्व पंद्रह करोड़ वर्ष प्राचीन है तथा प्रारंभ के चौदह करोड़ पचानवे लाख वर्ष तक मनुष्य ने फल-फूल, कंद-मूल, पत्ते, पौधे आदि खाकर ही अपने उदरपूर्ति की। यह धर्म-निरपेक्ष जीवनशैली है। शाकाहार उस पवित्र भावना का शंखनाद है कि धरती का एक-एक तत्त्व पवित्र है। लता और उन पर खिलने वाली कलियां हमारी बहनें हैं, पशु-पक्षी हमारे सहोदर हैं, मौसम की ठण्डक और मनुष्य की ऊष्मा हमारे कुटुम्बी हैं, धरती हमारी मां है तथा आकाश हमारा पिता। सह-अस्तित्व को ऐसे आत्मीयभाव से जोड़ने वाली सौगात का नाम है शाकाहार-जीवनशैली।

वस्तुतः प्रकृति पर आधारित सह जीवी जीवन-विद्या में अहिंसा की पूर्ण प्रतिष्ठा है। पूज्यपाद उमास्वामी के **परस्परोपग्रहो जीवानाम्** का मूल मंत्र शाकाहार में अन्तर्निहित है, जो हर प्राणी को प्रकृति और पर्यावरण से जोड़ता है। शाकाहार में हर धड़कते प्राण की सम्मान-भावना है और शाकाहार के प्रांगण में ही मैत्री और भ्रातृत्व के फूल खिल सकते हैं।

शाकाहार का **शा** शांति का, **का** कान्ति का, **हा** हार्द (स्नेह) का, और **र** रसा या रक्षा का परिचायक है। अर्थात् शाकाहार हमें शांति, कान्ति, स्नेह एवं रसों से परिपूर्ण कर हमारी मानवता की रक्षा करता है।

आधुनिक भौतिकवाद एवं वैश्वीकरण की आपाधापी के इस युग ने वर्तमान विश्व के समक्ष कुछ विशेष समस्याएं पैदा की हैं तथा अधिकांश आधुनिक वैज्ञानिकों का यह मत है कि उन सबका इलाज शाकाहार में ही निहित है। बिगड़ता पर्यावरण, गिरता मानव-स्वास्थ्य, नित नई बीमारियों का आतंक, कुपोषण आदि हमारी आज की कुछ प्रमुख बुनियादी समस्याएं हैं।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक वी. विश्वनाथ ने अपनी शोध से यह स्थापित किया है कि स्वास्थ्य और पर्यावरण की दृष्टि से शाकाहार अधिक बेहतर एवं आदर्श आहार है। अमेरिका के सुप्रसिद्ध लेखक जॉन रॉबिन्स ने **डाईट फॉर ए न्यू अमेरिका** में अनेक तथ्यों एवं शोधपूर्ण आकड़ों से यह सिद्ध किया है कि किसी भी देश की सभ्यता के

विनाश के मूल में वहां के निवासियों का मांसाहारी भोजन ग्रहण करना है। उन्होंने अपनी शोध से शाकाहार के साथ अनेक नए आयाम जोड़े हैं तथा मांसाहार से मिट्टी की उर्वरता, पेट्रोल का रिजर्व, जल की बर्बादी, वृक्षों में कमी, खाद एवं कीटनाशक के दुष्प्रभाव तथा मातृ-दुग्ध तक में ज़हर होने के अनेक तथ्यपूर्ण आंकड़ें संकलित किए हैं। यह पुस्तक बीसवीं शताब्दी की सर्वाधिक प्रभावशाली पुस्तक मानी गई है। फलस्वरूप अमेरिका और यूरोप में आज शाकाहार एक सशक्त आन्दोलन बन चुका है। अमेरिका के एक करोड़ चालीस लाख व्यक्ति मांसाहार त्यागकर शाकाहारी जीवन शैली को सहर्ष स्वीकार कर चुके हैं। **गार्जियन** अखबार की भविष्यवाणी के अनुसार आगामी बीस वर्षों में अमेरिका की करीब आधी आबादी शाकाहारी बन जानी चाहिए।

एक बहुत बड़ी भ्रान्ति है कि यदि तमाम मांसाहारी शाकाहारी बन जाएं तो उनके लिए पर्याप्त अनाज उपलब्ध नहीं होगा। तथ्य यह है कि शाकाहार संतुलित सामाजिक पर्यावरण हेतु एक अपरिहार्य शर्त है क्योंकि इससे प्राकृतिक संसाधनों का अपव्यय रुकता है। जहां एक किलो गेहूं के लिए ५० गैलन जल की जरूरत होती है वहीं एक किलो गौमांस के लिए १०,००० गैलन जल की आवश्यकता पड़ती है। इसी प्रकार जहां एक शाकाहारी ०.७२ एकड़ भूमि से अपना जीवन-यापन कर लेता है, वहीं मांसाहारी के लिए १.६३ एकड़ जमीन की आवश्यकता पड़ती है। अमेरिका में प्रकाशित एक आंकड़े के अनुसार एक एकड़ भूमि से लगभग २०,००० किलो आलू उत्पादन किया जा सकता है जबकि उतनी ही भूमि से गौमांस सिर्फ १२५ किलो ही मिल सकता है। समुद्रपारीय विकास परिषद के लीस्टर ब्राउन का कहना है कि यदि अकेले अमेरिका के लोग अपने मांसाहार में दस फीसदी की कटौती कर दें तो इससे सालाना १२० लाख टन अनाज की बचत होगी जिससे ६ करोड़ लोगों का पेट भरा जा सकता है जो अन्यथा प्रति वर्ष भूख से मर जाते हैं। अतः मांसाहार पूर्ण रूप से पर्यावरण- विरोधी आहार है।

सत्तर के दशक में रिओ-द- जेनेरो में आयोजित प्रसिद्ध पृथ्वी महासम्मेलन (Earth Summit) में यह बात बहुत अच्छी तरह स्वीकृत हो गई कि पर्यावरण संयोजित रखने में पशुओं की बहुत अहम भूमिका है। पशु एवं प्रकृति के संरक्षण एवं संवर्धन के प्रति वहां भारी चिन्ता व्यक्त की गई एवं हर कीमत पर उनको बचाने की आवश्यकता पर जोर दिया गया। पाकिस्तान की भू.पू. प्रधानमंत्री बेनज़ीर भुट्टो तक ने शाकाहार को स्वीकार करते हुए मांसाहार को भूखे भेड़ियों का भोजन कहा। इसी रिओ सम्मेलन में तत्कालीन भारतीय प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी से जब प्रेस साक्षात्कार में भारत के बैल युग के बारे में पूछा तो उनका उत्तर था कि भारत में

लाखों करोड़ों के नियोजन से प्राप्त ऊर्जा से अधिक ऊर्जा आज भी भारत में पशु ऊर्जा (Drought Animal Power) से प्राप्त होती है।

पर्यावरण के दूषित होने की समस्या हिंसा से जुड़ी है। बिना दूसरे प्राणियों का वध किए मांस प्राप्त नहीं हो सकता है। संसार का हर प्राणी जीना चाहता है। जब हम किसी को जीवन दे नहीं सकते तो जीवन समाप्त करने का किसी को कोई अधिकार नहीं है। शाकाहार का अर्थ है हर धड़कन का सम्मान। शाकाहार में दूसरों को दुःख पहुंचाकर पेट भरने के लिए कोई स्थान नहीं है, तभी तो जार्ज बर्नाड शॉ ने कहा था, 'मेरा पेट कब्रिस्तान नहीं है जहां मृत पशुओं को दफन किया जा सके।'

लम्बी आयु, निरोगी काया, शाकाहार की ऐसी माया। शाकाहार से ही मनुष्य पूर्ण एवं लम्बी आयु सरलता से पा सकता है। जापान में किए गए अध्ययनों से ज्ञात होता है कि शाकाहारी न केवल स्वस्थ एवं निरोग रहते हैं अपितु दीर्घजीवी भी होते हैं और उनकी बुद्धि भी अपेक्षाकृत कुशाग्र होती है। बाइबिल में लिखा है- 'तुम यदि शाकाहार करोगे तो तुम्हें जीवन-ऊर्जा प्राप्त होगी, किन्तु यदि तुम मांसाहार करते हो, तो वह मृत आहार तुम्हें भी मृत बना देगा।'

रोगों की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में फाइबर का बड़ा महत्त्व है। मांसाहार में फाइबर बिल्कुल शून्य होता है जबकि शाकाहारी खाद्यान्न में फाइबर (दाल या अनाज का ऊपरी छिलका) के साथ संतुलित आहार के सभी तत्त्व जैसे प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइड्रेट, खनिज-लवण, विटामिन आदि भी सुलभता से प्राप्त हो जाते हैं। वनस्पति, अनाज, दालें, दूध, फल एवं सब्जियों में प्रचुर मात्रा में इनका समावेश है। अपने दैनंदिन कार्य हेतु एक व्यक्ति को जितनी ऊर्जा जरूरी होती है वह शाकाहार में सहज ही सुलभ हो जाती है तथा वह भी काफी किफायती कीमत पर।

सम्पूर्ण सृष्टि में एक भी ऐसा व्यक्ति मिलना कठिन है जो मात्र मांसाहार पर जीवन-यापन करता हो जबकि ऐसे करोड़ों व्यक्ति हैं जो जीवनपर्यंत सिर्फ शाकाहार पर स्वाभाविक रूप से जीवन यापन करते हैं। अर्थात् शाकाहार अपने में संपूर्ण संतुलित आहार है।

मानव की शारीरिक रचना भी शाकाहार के ही अनुकूल है। मानव के दांत, आंत, नाखून, जीभ, शक्ति सभी मांसाहारी प्राणी से भिन्न हैं। शाकाहारी को पसीना आता है, मांसाहारी को नहीं आता है क्योंकि शाकाहारी के अंगों में हाइड्रोक्लोरिक एसिड कम होता है जबकि मांसाहारी में यह दस गुणा अधिक होता है। शाकाहारी की लार क्षारीय होती है और मांसाहारी की अम्लीय। अतः इस वैज्ञानिक संरचना से भी यह सुस्पष्ट है कि मनुष्य प्रकृति से शाकाहारी है।

संसार के सर्वाधिक शक्तिशाली जानवर हाथी, शक्ति का मानक घोड़ा, बलिष्ठ पशु गैंडा, सर्वाधिक उपयोगी एवं दूध देने वाली गाय एवं भैंसे सब पूर्ण शाकाहारी पशु हैं। अमेरिका के हारवर्ड मेडिकल स्कूल के डॉ. ए. वाचमैन एवं डॉ. डी. एस. बर्नस्टीन ने अपनी खोजों से यह निष्कर्ष दिया है कि जिनकी हड्डियां कमजोर हों उन्हें मांसाहार छोड़कर शाकाहार, अधिक सब्जियां, प्रोटीन एवं दूध का सेवन करना चाहिए।

चिकित्सकों का यह मानना है कि कैंसर, रक्तचाप, वात, हृदय रोग, डाइबिटीज तथा अधिकांश आधुनिक बीमारियां शाकाहारी की अपेक्षा मांसाहारी को होने की संभावना बहुत अधिक रहती है। कारण शाकाहार में कोलेस्ट्रॉल कम एवं वसा अधिक पाया जाता है जबकि मांसाहार में कोलेस्ट्रॉल अधिक एवं वसा शून्य है। अतः अमेरिका, इंग्लैंड में डाक्टर रोग से छुटकारा पाने के लिए शाकाहारी भोजन अपनाने की सलाह देते हैं। लंदन से बी.बी.सी. टेलीविजन द्वारा सप्ताह में एक अण्डे से अधिक सेवन न करने की जनता को सलाह दी जाती है।

इंग्लैण्ड की वेजीटेरियन सोसाइटी, जिसकी स्थापना १८४७ ई. में हुई थी तथा जिसकी सभाओं की शोभा जार्ज बर्नार्ड शॉ और महात्मा गांधी जैसे विश्वविश्रुत महामानव बढ़ाते थे, यूरोप की सर्वाधिक प्राचीन शाकाहारी संस्था है। इसने शाकाहार शब्द को व्यापक अर्थ दिया। सम्पूर्ण, निर्दोष, स्वस्थ, ताजा और जीवन्त आहार यानी शाकाहार एक निर्दोष एवं सम्पूर्ण आहार है जो व्यक्ति को स्वस्थ, ताजा और जीवन्त बनाए रखता है।

इस प्रकार शाकाहार मानवीय अस्मिता का दीप-स्तंभ है। शाकाहार मानव को प्रकृति का अनुपम उपहार है। यह जीवन-मूल्यों का स्वर्ण किरीट है। शाकाहार संयम का अमृत पाथेय और सर्वमान्य, निरापद एवं समृद्ध आहार है। आज आवश्यकता है हमें जनमानस में इस विश्वास को गहरे बैठाने की कि ऐसी राजनीति जो मांस की खपत को बढ़ावा दे, मांस-निर्यात को प्रोत्साहन दे, एक विषकन्या की तरह है। ऐसे में आज मांसाहार की वीभत्सता एवं बहुआयामी नुकसान को उजागर करने एवं शाकाहार को विश्वमंच पर पूर्ण स्थापित कर प्रमुख आहार के रूप में महिमा मण्डित करने हेतु एक वैचारिक क्रांति की परम आवश्यकता है।

- ४६, स्ट्रॉण्ड रोड, तीन तल्ला, कोलकाता- ७०० ००७

चिन्तन-कण

परमेष्ठी नवकार मंत्र

- श्री आसूलाल संचेती

'नवकार मंत्र' पर जो सारगर्भित व शोधपूर्ण लेख प्रकाशित हुए हैं वे **'शोधादर्श'** का नाम सार्थक करते हैं। उनमें जो विचारोत्तेजक तत्व हैं उनके फलस्वरूप उत्पन्न हुए चिन्तनकण यहाँ प्रस्तुत हैं:-

सर्वप्रथम इस सूत्र का मंत्ररूप में परिवर्तन। इसमें तो किसी को किसी प्रकार की आपत्ति नहीं होना चाहिये कि यह सूक्ति जगत्प्रसिद्ध है कि प्रत्येक अक्षर मंत्र हो सकता है, प्रत्येक वनस्पति औषधि एवं हर मनुष्य योग्य हो सकता है यदि योजना व योजक सक्षम हों, जो निसंदेह दुर्लभ है यथा-

अमंत्रम्, अक्षरंनास्ति
नास्तिमूलम् अन्औषधम्
अयोग्यपुरुषः नास्ति
योजकस्तु दुर्लभः।।

यह भी सर्वविदित है कि **'ॐकार'** व **'गायत्री'** मंत्रों से लेकर **'भक्तामर'**, **'कल्याण मंदिर'** आदि स्तोत्रों को मंत्र रूप में प्रचलित व स्वीकार किया जाता है। हाँ, आवश्यकता है साधना व तपस्या की जिसके द्वारा ये मंत्र सिद्ध किये जाते हैं। अवश्य ही विगत में महापुरुषों ने तपस्या व साधना करके अन्य मंत्रों की तरह **'नवकार'** को सिद्ध किया होगा तभी से इस मंत्र का रूप और प्रभाव स्वीकार किया गया होगा। तभी हर जैन इस मंत्र का जाप या पाठ करता है एवं इसके चित्र हर जैन घर, दुकान या दफ्तर में प्रदर्शित होते हैं।

इसके पश्चात् चिन्तन धारा दो तरफ मुड़ती है। क्या पूर्वजों द्वारा सिद्ध मंत्र का फल केवल माला फेरने या पाठ करने से आज प्राप्त हो सकता है ?

हुआ यह है कि केवल **'नवकार'** का प्रदर्शन या जाप प्रचलित हो गया है। कई जगह इसका जाप सामूहिक रूप से दिनभर, सप्ताह भर और अधिक काल तक किया जाता है! अधिकतर यह जाप कबीर की याद दिलाता है:-

माला तो कर में फिरे, जीभ फिरे मुख माहिं।
मनुआ तो चहुँदिस फिरे, ये तो सुमिरन नाहिं।।

कई बार विज्ञान का सहारा लेकर मशीनों द्वारा ही पाठ करा लिया जाता है जो अनवरत चलता रहता है बिना कोई कष्ट उठाये। फिर आजकल पाठ के माध्यमों की, जैसे चित्र वगैरह की, बोली लगती है। नीलाम होता है और सामने आ जाती है जैनियों की अर्थ-प्रदर्शन की प्रवृत्ति! इसमें, अप्रत्यक्ष रूप से ही सही, संत समाज का प्रोत्साहन होता है।

यहां अभी कुछ संतों के सहयोग से मंत्राभिषिक्त सैकड़ों चांदी के कलश कई श्रावकों ने अपने घरों में स्थापित किये हैं। फलस्वरूप कलश स्थापकों को वांछित फल मिला या नहीं, यह संदेहास्पद है, हां कलश बनाने वालों की चांदी जरूर हो गयी थी।

यह सही है कि नीलाम या बोली से प्राप्त धन का उपयोग धार्मिक कृत्यों जैसे जीवदया आदि के लिये होता है। किन्तु उस धन का रंग अधिकतर श्याम ही होता है जिसे श्वेत करने के लिये जो तरीके इस्तेमाल किये जाते हैं वे धार्मिक क्षेत्र में कहां तक उचित हैं, यह चिन्तनीय है।

इससे जो वृहद् प्रश्न सामने आता है वह है दानादि के लिये प्रयुक्त धन के न्यायोपार्जित होने का है, जो अनुत्तरित ही रहे तो ठीक है क्योंकि कहने को तो

न्यायार्जित वस्तु उत्सर्ग दान होता है,
दाता पात्र हो निर्विकार तब दान होता है।

आजकल प्रत्येक धर्मक्रिया, चाहे वह मंदिर आदि धर्मस्थल का निर्माण हो या चाहे चातुर्मास आदि में संत समागम, अर्थाधीन हो गयी है जबकि इसके विपरीत अर्थक्रिया अर्थात् अर्थोपार्जन धर्माधीन होना चाहिये था। इस विषय पर ध्यान दिया जाना अपेक्षित है क्योंकि आजकल प्रत्येक राजविरुद्ध कार्य, चोरी, मिलावट आदि में जैन नाम जरूर जुड़ा नजर आता है। जबकि पहले जैन धर्मानुयायियों को विश्वसनीय व नैतिक माना जाता था।

इस विषय में कुछ प्रयास भी हुए हैं। श्वेताम्बर स्थानकवासी या ढूंढिया समाज इसीलिये बना कि धर्म को अर्थ से छुड़ाया जावे। कहा जाता था

पैसा लगे न टका,
धर्म ढूंढिया पक्का।

लेकिन अफसोस इन समाजों में अब अर्थ उतना ही हावी हो गया है जितना अन्य मान्यताओं में।

दूसरा चिन्तन का विषय है देवता का योगदान। वैज्ञानिक प्रगति के इस युग में जैन धर्मानुयायियों द्वारा इन्द्रों एवं उनकी इंद्राणियों को कष्ट देना कहां तक उचित है? कहते हैं नवकार मंत्र आदि के जाप से देवता प्रसन्न होते हैं। यक्ष आते हैं, भैरव रक्षा करते हैं। अभी मंदिरों में पूजा के समय श्रावक इन्द्र बनते हैं, मुकुट लगा कर घूमते हैं। और इसमें भी संत समाज का पूर्ण सहयोग होता है। शायद वे शास्त्रों में भरे धरणेन्द्र शुक्रेन्द्र आदि से उबर नहीं पाये हैं। इस वैज्ञानिक युग में तो देवताओं को विश्राम लेने दिया जावे तो उचित होगाः-

फरिश्ते हम भी नहीं, फरिश्ते तुम भी नहीं,
हम आदमी, क्यों न आदमी की बात करें।।

वस्तुस्थिति यह है कि तपस्या एवं सच्ची साधना से जो आध्यात्मिक विकास होता है उससे असंभव भी संभव हो जाता है। देवताओं के माध्यम की आवश्यकता ही नहीं रहती। मगर इसमें पड़ती है मेहनत ज्यादा। इकबाल का कथन भी है -

खुदी को कर बुलंद इतना कि
हर तकदीर से पहले
खुदा बंदे से खुद पूछे
बता तेरी रजा क्या है

अब आते हैं 'नवकार' के क्रमिक विकास-विस्तार की तरफ। जैसा कि विदित है, खारवेल के समय का दो सूत्रों में नमस्कार मंत्र मिलता है- **'नमो अरहंतानं। नमो सवसिधानं।'** यही विस्तार पाते-पाते आज पांच सूत्रों में स्वीकार्य है, जिसमें इन दो के अलावा तीन पदों में आचार्य, उपाध्याय एवं साधु नमस्कारित हैं। वैसे भी विस्तार प्रत्येक सूत्र या ग्रंथ की परिणति है। **महाभारत** जो आज एक लाख श्लोकों में मिलता है प्राचीन काल में चालीस हजार श्लोकों में सीमित था। शायद पंडित लोग मूल में परिवर्तन-परिवर्धन करना अपना अधिकार मानते रहे क्योंकि इससे पंडिताई लगाने की और अपनी मान्यताएं थोपने की सुविधा हो जाती है।

वैसे **'मंगल पाठ'** में साधु के साथ आचार्य, उपाध्याय को अलग लिखना उचित नहीं समझा गया। वहाँ पर चार को मंगल व शरण रूप माना है, यथा- अरहंत, सिद्ध, साधु व धर्म। बौद्धों के यहाँ बुद्ध, धर्म एवं संघ इन तीनों को शरण रूप माना है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भूत काल के दो सूत्र चार शरण होकर पंच परमेष्ठी हो गये हैं।

साधुओं की अनेक श्रेणियां हैं। केवल उपाध्याय, आचार्य ही नहीं। आजकल प्रवर्तक/उपप्रवर्तक श्रेणी व पद प्रचलित हो रहे हैं। साधु मंडली की लोकेषणा तुष्टि के लिये और पद भी प्रचलित हो जायें तो आश्चर्य नहीं होगा। फिलहाल पंच पदों को सात पद कर सकते हैं। 'नमो प्रवर्तकाणं' एवं 'नमो उपप्रवर्तकाणं' जोड़कर। अभी भी त्रिरत्न-ज्ञान, दर्शन और चारित्र तथा तप को जोड़कर नौ पदों की वंदना तो प्रचलित है ही और मंदिरों में इसके उत्कीर्णित पट्ट एवं चक्र उपलब्ध हो जाते हैं।

गम्भीर चिन्तन से निष्कर्ष यही निकलता है कि वास्तव में दो पद **अरहंत** व **सिद्ध** ही वंदनीय, पूजनीय व नमस्कारणीय हैं। क्योंकि इन दोनों ने ही घाती कर्मों का नाश कर दिया और ये ही मोक्ष मार्ग के सच्चे नेता हैं जो पूज्यपाद की परीक्षा में खरे उतरते हैं। **तत्त्वार्थसूत्र** में कहा गया है -

मोक्षमार्गस्य नेतारं, भेत्तारं कर्मभूभृताम्,
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां, वन्दे तद्गुण लब्ध्ये।

बाकी आज का सकल साधु समाज तो छद्मस्थ ही है और कुछ तो दूर से ही प्रणाम करने योग्य हैं- क्या आचार्य, क्या उपाध्याय, क्या प्रवर्तक, उपप्रवर्तक क्या साधु क्योंकि हो सकता है इनमें कई अभवी ही हों।

अरहन्त और **सिद्ध** भगवत् स्वरूप हैं। अरहंत सरूपी हैं और सिद्ध अरूपी, या कह सकते हैं सगुण व निर्गुण। इस प्रकार समन्वयवादी जैन धर्म सगुण-निर्गुण दोनों को वंदन कर उपासना में समन्वय स्थापित कर देता है। यूं भी अरहंत का स्थूल रूप आसानी से समझ में आता है। सिद्ध का सूक्ष्म रूप जरा कठिन है और पहले अरहंत का सरूप वंदन उसकी ग्राह्यता आसान कर देता है। इस दृष्टि से भी अरहंत का प्रथम सूत्र होना उचित जान पड़ता है। फिर चार घाती कर्मों का क्षय आठों कर्मों के क्षय से पहले ही होता है। इसमें छोटे-बड़े का भेद करने की आवश्यकता नहीं बल्कि यह सिर्फ क्रमबद्धता का प्रमाण है।

- 'अलका', डी-१२१, शास्त्री नगर, जोधपुर- ३

उपालम्भ देवानंदा का

- जस्टिस एम. एल. जैन

(चौबीसवें तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर दिगम्बर, श्वेताम्बर, स्थानकवासी सभी परम्पराओं में समान रूप से उपास्य हैं और सभी परम्पराओं में उनके जीवन आदि के सम्बन्ध में अपने-अपने रूप में जो कथानक उपलब्ध हैं, उनमें किसी को भी अमान्य कहना अनुचित होगा। जस्टिस जैन की प्रस्तुत रचना श्वेताम्बर परम्परा में प्राप्त कथानक पर आधारित है। - सम्पादक)

१. वैशाली में यह कैसी छटा बनी है आज।
हर्षित हो रहा बाल-युवा-वृद्ध सभी समाज।

२. सभी तरु और लताओं के पल्लव हुए हरे।
महक रहे सब पुष्प, भ्रमर गुंजन से हैं भरे।।

३. पशु हुए रोमांचित, चहक रहे हैं पंछी गण।
स्वच्छ हुआ नीलाम्बर, शीतल बह रहा पवन।।

४. चारों ओर सुनाई दे रहा संगीत मधुर।
धवल मंगल रागों के नभथल में गुंजित स्वर।।

५. दौड़ रहा एक उस ही ओर नगर का जन जन।
कैसी यह हलचल, कैसा यह सहसा परिवर्तन।।

६. देवानंदा ने देखा घर नहीं है नंदन।
ऋषभदत्त पति भी हैं उधर कर पए पलायन।।

७. क्यों रुकी हो माते तुम, बोला इक पथिक चतुर।
समवसरण वीर का आया दर्शन को आतुर।।

८. लकुटी कर, झुकी कमर, चली वह मंथर-मंथर।
सभा भवन जा देखा बना वैभव अति सुन्दर।।

९. तिर्यंच नर सुर सम्राटों का आना जाना।
देख रहे सभी आसन अपना कहीं जमाना।।

१०. भेजा द्वारपाल ने उसको महिला वर्ग में।
मंच वहां लख, लगा मानों आ गई स्वर्ग में।।

११. तब चमत्कार इक हुआ अद्भुत उसके तन में।
देख प्रभु को उमड़ा उर में नेह दूध स्तन में।।
१२. वह चली त्वरित, पहुंची गौतम गणधर के पास।
कारण बताएंगे वे यही लेकर विश्वास।।
१३. पूछा गौतम से, उन को तो था सब कुछ पता।
फिर भी पूछा प्रभु से सबको दें कारण बता।।
१४. सुनकर समवसरण में गूंजी दिव्य यह वाणी।
कहा वीर ने अचरज नहीं कोई कल्याणी।।
१५. गर्भ में तेरे ही था आया जीव हमारा।
तीन मास तक वहीं पला बढ़ा यह बेचारा।।
१६. हम आए द्विज के घर में यह जान हुए व्यथित।
उधर जान व्यथा हमारी सुरेन्द्र हुआ विचलित।।
१७. जानता बह था ही, गर्भवती त्रिशला रानी।
गर्भान्तरण करने भेजा सुर सर्जन ज्ञानी।।
१८. उसने तुम्हें और त्रिशला को बेहोश किया।
भ्रूण अंतरण सफलता से कर सुरलोक गया।
१९. यूं हे द्विज सुता तुम हो मेरी पहली माता।
मुझे लख उर में नेह क्यों न स्तन में पय आता?
२०. हमें क्षत्रिय कुल में जाना था, गलती से पर।
तुम्हारे घर पहुंचा हमारा जीव भटक कर।।
२१. यह सुन कर समवसरण में सब थे स्तब्ध अशांत।
पर प्रभु थे मौन, धीर, गंभीर, प्रशांत नितान्त।
२२. गौतम मौन, क्रोध से भर उठी देवानंदा।
कंपित वदन, रक्त नयन सकी न निज भाव दबा।।
२३. कहा ही गौतम से, 'बोलो कुछ तो बोलो तुम।
तुम भी तो गौतम द्विज हो कहो कुछ तो गौतम।।
२४. किस लिए प्रभु ने छोड़ा गर्भावास हमारा।
क्या किया अपराध! क्यों किया उपहास हमारा।।

२५. हमारे ही शोणित से तो निर्मित इनका तन।
गौतम ये फिर गए कैसे द्विज से क्षत्रिय बन।।
२६. मेरे, त्रिशला के साथ हुआ कैसा अन्याय।
जो अन्या के सुत को अपना लिया बनाय।।
२७. क्या पूछूं इनसे, ये तो हो गए तीर्थंकर।
करते हैं धर्म प्रवर्तन ममत्वहीन होकर।।"
२८. यह कह अट्टहास कर उठी वह निर्बल महिला।
थे विस्मय चकित ठगे से सिद्धार्थ व त्रिशला।
२९. आँसू से भर कर, कंपित बदन मन मसोस कर।
देवानंदा हो गई समवसरण से बाहर।।
३०. कवि लिख देवानंदा का उपालंभ अवसाद।
वर्ना इतिहास क्षमा न करेगा तब अपराध।।
३१. उठा कलम लिख वर्णद्वेष की करुण कहानी।
नारी के उरस्थल में पय, नयनों में पानी।।

- ३१, विजय पथ, तिलकनगर, जयपुर

पारदर्शी कुण्डली

दीक्षा-जन्म जयन्तियाँ, जीवित मनती आज।
दर्शन नहीं प्रदर्शनी, लगा रहे मुनिराज।।
लगा रहे मुनिराज, खर्च कर लाखों दमड़ी।
खाकर काजू-दाख, बनाते हेल्थ ये तगड़ी।।
पाएँ 'पारदर्शी', सन्त मनचाही भिक्षा।
सेवक मुनि के साथ, कहो ये कैसी दीक्षा।।

- सन्त ॐ पारदर्शी
पारदर्शी साधना केन्द्र,
२६१, उत्तर आयड़, उदयपुर-३१३००१

मन का करूं अभिषेक बनूं पावन

पावन प्रतिमाओं का अभिषेक
मस्तकाभिषेक बहुत किया/करवाया
कर्तृत्व-भाव से हर्षित भी हुआ
किन्तु, मन की मलिनता कम न हुई।

धन, ज्ञान, ऐश्वर्य बढ़ने पर
मलिन अपावन भाव बढ़े
अनैतिक कपटपूर्ण वृत्ति से
मन, मानव मूल्यों से दूर हुआ।

धर्म निष्ठा, सामाजिक सद्भाव,
आत्म शांति का हुआ विसर्जन
हे प्रभु! ऐसा पावन जल दे दो
मन का करूं अभिषेक, बनूं पावन!

ध्रुव-ज्ञायक जानूं पहिचानूं
ज्ञान-पर्याय करूं न्यौछावर
निज वैभव का अनुभव कर
महावीर का बनूं अनुचर।

-डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल, अमलाई

मैं कहता हूँ आतमदेखी

तुम कहते हो कागजलेखी
मैं कहता हूँ आतमदेखी।
कागजलेखी परोपदेशी
मैं कहता हूँ आतमसाक्षी।।
शब्दमूढ ना बनो साथियों
अर्थमूढ भी रहो कभी ना।
ज्ञानमुग्ध हो तत्त्व जान लो
ज्ञान साथ है शब्द साथ ना।।
पंडिताइ को गले लगाने,
परंपरा में हर्ष मानते।
अहंकार में रमने वालों।
पंडिताइ भी साथ रहे ना।।
अनुभूति में खुद को परखो
केवलज्ञान हि अनन्त साथी।
तुम कहते हो कागजलेखी।
मैं कहता हूँ आतमदेखी।।१।।
ग्रहण त्याग आत्मस्वभाव ना
ग्रहणत्याग में मुक्ति सौख्य ना।
अनन्तानुबंध ही पाने
सौख्य अतींद्रिय प्राप्ति लेश ना।।
प्रज्ञा से था पाया बंधन
प्रज्ञा से ही तोड़ो उसको।
ममता में ही संसार बसा
समता में बस शिवसुख अपना।।
अनादि शाश्वत समता साथी, ममता भवसिंधु में डुबाती।
तुम कहते हो कागज लेखी, मैं कहता हूँ आतम देखी।।२।।

श्री मनोहर मारवडकर,
स्वधर्म, १६ (ब) महावीर नगर, नागपुर-१

परिवेश

जन्म-दिन आपनो मनावते उछरि कूदि,
'आम लेट' 'चाकलेट' मित्रन जिमावते।
पूजत न गौरी, गन नायक बिसरि गये,
'केक' काटि 'कैंडिल' जरावते बुझावते।।
भोजन भजन, पद-बन्दना असीस कहाँ,
'हैपी-हैपी' कहि, तारी मटकि बजावते।
कुमकुम-तिलक'परमानन्द' न धारै कोऊ,
'जोकर' समान 'कैप' सीस पै लगावते।।

बेचते कबाड़ रहिबे को कहूं ठौर नाँहि,
बैठि -'हीरो होंडा' गलियान मैं चलावते।
देखते न ऊँच-नीच, नारी और पनारो कींच,
फर फर फर फर, कींचड़ उछालते।।
अच्छर जो कारो लागै भैंस के समान तऊ,
ठाढ़े बीच पंथ में 'मोबाइल' सों भाखते।
नेता अभिनेता 'परमानन्द' कछूक नाँहिं
पत्रकार, पेशकार प्रमुख बतावते।।

- डॉ. परमानन्द जडिया
५१, खत्री टोला, मशकगंज, लखनऊ- २२६०१८

पहले आप

नगर लखनऊ ने किया, ग्रहण मन्त्र यह गूढ़।
मर्म न 'पहले आप' का, समझ सके कुछ मूढ़।१।।
परमसुखद संतोषप्रद, कहना 'पहले आप'।
'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्,' भी है 'पहले आप'।।२।।
देना पाने से सुखद, विनत मधुर आलाप।
है 'वसुधैव कुटुम्बकम्', कहिए 'पहले आप'।।३।।

- जयराम दास रस्तोगी
५३८ क/१५२२, त्रिवेणी नगर ।।।, सीतापुर रोड, लखनऊ-२०

क्षणिकाएं

कहलाते थे मुनिराज, किस शान से जिये
बैकुण्ठी में बैठ बैकुण्ठ धाम वह चल दिये
राजनीतिज्ञों के बीच गुजारी थी सारी ज़िन्दगी,
अन्त्येष्टि में अपनी राजकीय सम्मान पा लिये।।

मूर्ति का अपनी स्वयं अनावरण कर दिया
औरों को नहीं हक, साफ कर दिया
माया का ठहरा मामला, राम ही जाने,
एक नया कीर्तिमान इतिहास में रच दिया।।

हादसे यहाँ अब इतने आम हो गये
बात सुनते उनकी, कान जाम हो गये
पुलिस की मुस्तैदी के क्या हैं कहने,
स्याह अखबार के कालम तमाम हो गये।।

जाम ही रह गये अब ज़िन्दगी में हमारी
सड़कों पर चलना हो गया हमारे लिये भारी
बढ़ती आबादी और बढ़ते अतिक्रमण ने हमें मारा,
कैसे पहुँचे समय से गन्तव्य पर, समस्या हमारी।।

- रमा कान्त जैन
ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र.
प्रगति प्रतिवेदन वर्ष २००४-२००५

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र., का गठन सन् १९७६ ई. में २४वे तीर्थंकर भगवान वर्धमान महावीर स्वामी का २५००वां निर्वाण महोत्सव वर्ष मनाने के लिये राज्य सरकार द्वारा गठित श्री महावीर निर्वाण समिति, उ.प्र., की उत्तराधिकारी संस्था के रूप में जैन धर्म की सभी आम्नायों के महानुभावों के सहयोग से किया गया था तथा गठन के तुरन्त बाद ही उसे सन् १८६० ई. के सोसायटीज रजिस्ट्रीकरण अधिनियम के अन्तर्गत रजिस्टर्ड करा लिया गया था जिसका नियमानुसार नवीकरण कराया जाता रहा है। वर्तमान नवीकरण सं. १६४२/२००२ दिनांक २७.१२.२००२ मार्च २००६ तक का है । समिति की सभी प्रवृत्तियों का प्रारम्भ से ही सुचारु रूप से संचालन होता रहा है। समिति का पिछला प्रगति प्रतिवेदन (वर्ष २००३-२००४) शोधादर्श-५४ (नवम्बर २००४) के पृष्ठ ४४-४८ पर प्रकाशित है। यहाँ वर्ष २००४-२००५ (१ अप्रैल, २००४ से ३१ मार्च, २००५) का प्रगति प्रतिवेदन प्रस्तुत है। संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है-

१. तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र शोध पुस्तकालय

पुस्तकालय की स्थापना वर्ष १९७६ की श्रुत पंचमी को श्री मुन्नेलाल कागजी जैन धर्मशाला, चारबाग, लखनऊ में धर्मशाला ट्रस्ट के सौजन्य से उपलब्ध कराये गये एक बड़े कक्ष में की गई थी और इसका विधिवत् उद्घाटन अक्टूबर १९७६ में प्रदेश के तत्कालीन उच्च शिक्षा मंत्री माननीय डॉ. रामजीलाल सहायक के करकमलों से कराया गया था। दिनांक १ अप्रैल, २००१ से पुस्तकालय और उससे संलग्न वाचनालय श्री मुन्नेलाल कागजी धर्मशाला ट्रस्ट द्वारा भूतल पर किराये पर उपलब्ध कराये गये कक्षों में चल रहा है। समिति के सदस्यों के अतिरिक्त पुस्तकालय के अपने सदस्यों की संख्या ६२ रही। चारबाग ही नहीं, आसपास की कालोनियों के जैन परिवार तथा अनेक जैनेतर जिज्ञासु महानुभाव भी पुस्तकालय के सदस्य हैं। पुस्तकालय में जैन धर्म, दर्शन, संस्कृति आदि के अध्ययन हेतु जैन धर्म की सभी आम्नायों का साहित्य तथा शोधार्थियों द्वारा तुलनात्मक अध्ययन के लिये अन्य भारतीय धर्मों, दर्शनों एवं संस्कृति से सम्बंधित महत्वपूर्ण साहित्य रखने का प्रयास किया जाता है। अपने विशिष्ट

संकलन के लिये इन विषयों के शोधार्थी पाठकों में हमारा पुस्तकालय विशेष लोकप्रिय है तथा लखनऊ व कानपुर विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध अनेक शोध छात्र इससे लाभ उठाते हैं। सामान्य रुचि के पाठकों के लिये लौकिक एवं सामान्य ज्ञानवर्द्धक साहित्य भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है।

वर्ष २००४-२००५ में पुस्तकालय में रु. ४०,५६६/- मूल्य की ५७७ पुस्तकों की वृद्धि हुई जिनमें से रु. ३२,५४४/- मूल्य की ३७४ पुस्तकें राजा राममोहन राय पुस्तकालय प्रतिष्ठान, कोलकाता, से प्रदेश सरकार के शिक्षा विभाग (पुस्तकालय कोष्ठक) के माध्यम से पुस्तक अनुदान के रूप में प्राप्त हुईं। साथ ही एक स्टील का बुक केस शिक्षा विभाग, उ.प्र. शासन, से पुस्तकालय को अनुदान स्वरूप प्राप्त हुआ।

पुस्तकालय के संवर्द्धन हेतु इस वर्ष (२००४-२००५ में) डॉ. एस. के. जैन, सुपुत्र श्री चन्द्रकुमार जैन वैद्य, १०६/११, नया गांव, माडल हाउस, लखनऊ ने रु. ५,०००/- की सहायता प्रदान की। साथ ही श्री सुभाष जैन, शकुन प्रकाशन, नई दिल्ली ने रु. ३,३६०/- की ६६ पुस्तकें; श्री अवनीश गर्ग जैन, मकबरा, हजरतगंज, लखनऊ ने रु. १,६६२/- मूल्य की ६८ पुस्तकें; समिति के अध्यक्ष श्री लूणकरण नाहर जैन ने रु. ५००/- मूल्य की २ पुस्तकें तथा स्वयं हमने रु. ७१७/- मूल्य की १८ पुस्तकें पुस्तकालय को भेंट स्वरूप प्रदान कीं। कुछ अन्य महानुभावों से भी भेंटस्वरूप रु. ७६४/- मूल्य का फुटकर साहित्य और रु. २०२/- की धनराशि पुस्तकालय को प्राप्त हुई। हम इन सभी महानुभावों के आभारी हैं।

समिति ने अपनी ओर से भी रु. १,१२४/- का साहित्य क्रय किया। ३१ मार्च, २००५ को पुस्तकालय में पुस्तकों की कुल संख्या ७,६३६ थी।

शोध पुस्तकालय के वाचनालय में लगभग ६५ धार्मिक पत्र-पत्रिकाएं (साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक, चातुर्मासिक और षट्मासिक) आती हैं जिनमें से अधिकांश समिति की शोध-पत्रिका 'शोधादर्श' के परिवर्तन में प्राप्त होती हैं।

पुस्तकालय-वाचनालय से प्रतिदिन प्रायः ५० पाठक लाभ उठाते हैं। पुस्तकालय-वाचनालय का समय प्रातः ६.०० से अपराह्न २.०० बजे तक है। शनिवार और सार्वजनिक अवकाश पर पुस्तकालय-वाचनालय बन्द रहता है। पुस्तकालय-वाचनालय का कार्य पूर्ववत पुस्तकालय व्यवस्थापिका श्रीमती हेमा सक्सेना, एम.ए., द्वारा सुचारू रूप से देखा जाता रहा।

ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी, सोमवार, २४ मई, २००४ को पुस्तकालय में 'श्रुत पंचमी पर्व और शोध पुस्तकालय स्थापना दिवस' श्री लूणकरण नाहर जैन जी की अध्यक्षता में मनाया गया। दैनिक जागरण, लखनऊ की संवाददाता कु. अंजु उपाध्याय ने शोध पुस्तकालय की जानकारी प्राप्त कर दिनांक ३० जून, २००४ के अंक में पृष्ठ २ पर उसका सचित्र विवरण प्रकाशित किया। दिनांक २६ जुलाई, २००४ को जिला विद्यालय निरीक्षक, लखनऊ को वर्ष २००४-२००५ में अनुदान हेतु निर्धारित प्रपत्र पर प्रार्थना पत्र भेजा गया। दिनांक २३ फरवरी, २००५ को राजा राममोहन राय पुस्तकालय प्रतिष्ठान, कोलकाता के क्षेत्रीय अधिकारी श्री बी. एस. पोसवाल द्वारा पुस्तकालय का निरीक्षण किया गया।

२. शोधादर्श

जैन विद्या की शोध को समर्पित चातुर्मासिक शोध-पत्रिका 'शोधादर्श' का प्रकाशन फरवरी १९८६ में समिति द्वारा प्रथम अंक के प्रकाशन से प्रारंभ किया गया था। इसके आद्य सम्पादक इतिहास-मनीषी विद्यावारिधि डॉ. ज्योति प्रसाद जैन थे। उनके जीवन काल में केवल ६ अंक (फरवरी १९८८ तक के) निकल पाये थे। जून १९८८ में उनके स्वर्गवास के उपरान्त अंक ७ से प्रधान सम्पादक का उत्तरदायित्व डॉ. शशि कान्त ने बड़ी योग्यता से निभाया तथा अंक ३० (नवम्बर १९९६) से प्रधान सम्पादक का कार्यभार हम संभाल रहे हैं। पत्रिका की लोकप्रियता में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है तथा आज यह पत्रिका देश की उच्च स्तरीय धार्मिक-सांस्कृतिक शोध पत्रिकाओं में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। समय से प्रकाशित वर्ष के तीनों अंकों (५२-५३-५४) में २५८ पृष्ठों में प्रकाशित ज्ञानप्रद, उपयोगी पठनीय सामग्री की प्रबुद्ध वर्ग द्वारा व्यापक सराहना हुई है। इसमें निहित निर्भीक बेबाक टिप्पणियों, शोधपूर्ण सामग्री तथा इसकी सादगीपूर्ण छवि से प्रभावित हो कुछ प्रशंसक पाठकों ने इस वर्ष रु. २,५५५/- की राशि भेंटस्वरूप प्रदान की। अनेक गणमान्य विद्वान लेखक-रचनाकार इसमें अपने लेख-रचना आदि प्रकाशित होना अपना अहोभाग्य मानते हैं और पत्र-पत्रिकाएं इसमें प्रकाशित सामग्री को उद्धृत करने में गर्व अनुभव करती हैं। पत्रिका के सम्पादन, प्रेषण आदि में किये गये बहुमूल्य योगदान के लिये मैं अपने सहयोगी सम्पादक श्री रमा कान्त जी का विशेष आभारी हूँ। इस वर्ष 'शोधादर्श' के प्रकाशन-प्रेषण पर कुल व्यय रु. २६,६४३/- हुआ।

३. तीर्थंकर छात्र सहायता कोष

इस वर्ष ४२ विपन्न छात्र-छात्राओं को अध्ययन जारी रखने हेतु आंशिक सहायता प्रदान करने पर रु. १४,०३८/- का व्यय किया गया। हमारे उप मंत्री श्री महेन्द्र प्रसाद जी ने इस कार्य के सम्पादन में बहुमूल्य योगदान किया जिसके लिये मैं उनका विशेष आभारी हूँ।

४. महावीर जन कल्याण निधि

इस वर्ष चार असहाय धर्मनिष्ठ महिलाओं को वस्त्र-औषधि हेतु सहायता प्रदान करने पर रु. ४,२०१/- का व्यय किया गया। हमारे संयुक्त मंत्री श्री रमा कान्त जी ने इस निधि का कार्य सम्पादन करने में बहुमूल्य योगदान किया।

समिति के लेखों का आडिट इस वर्ष भी ए. जिन्दल एण्ड कम्पनी, चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट्स, द्वारा किया गया और उनके माध्यम से आयकर कार्यालय को आयकर विवरणी प्रस्तुत की गई।

शासन से प्राप्त उपर्युक्त पुस्तक अनुदान और स्टील बुक केस तथा कतिपय दातारों से भेंटस्वरूप प्राप्त साहित्य के अतिरिक्त कुल प्राप्तियां वर्ष में रु. ३,१६,७७१.३० पैसे रहीं (इसमें फिक्स्ड डिपाजिटों पर परिपक्वता पर प्राप्त लाभ स्वरूप रु. २,३६,२५०.०० सम्मिलित हैं जिन्हें ध्रौव्य फण्ड के रूप में फिक्स्ड डिपाजिटों में पुनः निवेशित किया गया तथा रु. ५००.०० पुस्तकालय सिक्योरिटी मनी भी है जो रिफन्डेबिल है) तथा व्यय रु. ७१,७६५.८५ पैसा हुआ (इसमें पुस्तकालय-वाचनालय कक्षों का रु. ८००/- प्रतिमास की दर से किराया रु. ६,६००/- सम्मिलित नहीं है क्योंकि उसका समायोजन श्री मुन्नेलाल कागजी धर्मशाला ट्रस्ट को पूर्व में दी गई एक लाख रुपये की अग्रिम धनराशि से होता है)। प्राप्ति-व्यय की विवरण तालिका संलग्न है।

समिति के अध्यक्ष आदरणीय श्री लूणकरण जी नाहर का सक्रिय सहयोग एवं मार्गदर्शन हमें निरन्तर मिलता रहा जिसके लिये हम उनके विशेष आभारी हैं। उपाध्यक्ष श्री कन्हैयालाल जी एवं श्री नरेशचंद्र जी, कोषाध्यक्ष श्री बिजयलाल जी, संयुक्त मंत्री श्री रमाकान्त जी, उपमंत्री श्री महेन्द्रप्रसाद जी और श्री रोशनलाल जी नाहर तथा प्रबंध समिति के सभी माननीय सदस्यों के सौहार्दपूर्ण सहयोग के लिये हम आभारी हैं। श्री रमा कान्त जी ने तो शोधादर्श के सम्पादन सहित समिति के सभी कार्यों के निष्पादन में अपने सक्रिय सहयोग से हमारा हाथ बंटाया।

२ जून, २००५ — **अजित प्रसाद जैन**

महामंत्री

TIRTHANKAR MAHAVIR SMRITI KENDRA SAMITI, U. P.

STATEMENT OF RECEIPTS & PAYMENTS FOR THE YEAR ENDING 31st MARCH, 2005

RECEIPTS

Balance b/d		
F.D.Rs	15,28,613.00	
S.B. Account	59,337.48	
Cash in Hand	2,580. 86	15,90,531.34
Research Library		
Security Deposit	500.00	
Subscription	1,240.00	
Donation	5,202.00	6.942.00
Magazine		
Subscription	3,216.00	
Donation	2,555.00	
		5,771.00
Membership Fee		152.00
Interest on F.D.Rs		64,656.30
F.D.Rs Maturity		2,39,250.00
Total		19,07,302.64

PAYMENTS

Research Library		
Salary Library Asst.	18,000.00	
Salary Cleaner	1,440.00	
Contingencies	635.61	
Stationery & Printing	790.00	
Postage	455.00	
Books	1,124.00	
		22,444.61
Magazine Expenses		
Printing & paper	25,883.00	
Postage	3,760.00	
		29,643.00
M. J. K. Nidhi Expenses		4,201.00
T.C. S. Kosh Scholarship Exp.		14,038.00
I.T. Counsel's Fee		600.00
Audit Fee		500.00
Bank Charges		37.00
Refund of excess Interest		302.24
Miscellaneous expenditure		30.00
Balance c/d		
FDRs	18,17,863.00	
S. B. Account	9,296.54	
Cash in Hand	8,347.25	
		18,35,506.79
Total		19,07,302.64

A. P. JAIN
महामंत्री
तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र.,
पारस सदन, आर्य नगर, लखनऊ

Lucknow, June 2, 2005

Compiled from information and explanations furnished

For A. Jindal & Co.
Chartered Accountants
Alok Jindal

कुवलयमाला कहा

- श्री रमा कान्त जैन

प्राचीन भारतीय कथा साहित्य का एक अनमोल उपहार है **'कुवलयमाला कहा'**। इसकी रचना आचार्य वीरभद्र के शिष्य उद्योतनसूरि ने जावालिपुर (सोनगिरि की तलहटी में बसा और भिल्लमाल से ३३ कि.मी. की दूरी पर स्थित वर्तमान जालौर) के ऋषभ जिनालय में शक संवत् ७०० पूरा होने से एक दिन पूर्व चैत्र कृष्ण १४ तदनुसार २१ मार्च, ७७६ ई. को पूर्ण की थी। उस समय वहाँ गुर्जर प्रतिहार राजा वत्सराज रणहस्तिन् राज्य करता था। यह कथा ग्रन्थ प्राकृत भाषा में गद्य-पद्यमय चम्पू शैली में निबद्ध है। प्राकृत भाषा के तत्समय प्रचलित विविध रूपों के साथ पात्रों की सामाजिक एवं व्यक्तिगत योग्यता के अनुरूप कथनोपकथन में संस्कृत, अपभ्रंश, पैशाची और देशी भाषाओं के शब्दों का प्रयोग इस कृति में हुआ है।

धर्म, अर्थ और काम इन तीन पुरुषार्थों पर केन्द्रित यह कथाकृति प्रधानतया धर्मकथा है। कथाकार ने प्रस्तुत कथा को 'संकीर्णकथा' या 'मिश्रकथा' नाम दिया है। २८३ अधिकारों में अनुस्यूत जन्म जन्मान्तर की कथा की नायिका कुवलयमाला है और नायक है कुवलयचन्द्र। अन्य प्रमुख पात्रों के रूप में संसार-भ्रमण के कारण क्रोध, मान, माया, लोभ और मोह को रूपांकित कर चंडसोम, मानभट, मायादित्य, लोभदेव और मोहदत्त की कथा कही गई है।

एक धार्मिक सन्त होते हुए भी उद्योतनसूरि की विविध विषयक विद्वत्ता अगाध थी। उन्हें विभिन्न दर्शनों का ज्ञान था और लौकिक कलाओं के वह मर्मज्ञ थे। उनकी एकमात्र उपलब्ध कृति **'कुवलयमाला कहा'** उनकी साहित्य सृजन प्रतिभा की द्योतक है। साहित्य मर्मज्ञों ने इसे बाणभट्ट की 'कादम्बरी' के समतुल्य माना है।

सन् १९१६ ई. में इस कथाकृति का रत्नप्रभसूरि द्वारा किया गया संस्कृत रूपान्तर प्रकाशित हुआ था। सन् १९५९ ई. में भारतीय विद्या भवन, मुम्बई, से डॉ. ए. एन. उपाध्ये द्वारा सम्पादित होकर यह प्रकाशित हुआ। सन् १९६५ ई. में इसका गुजराती अनुवाद प्रकाशित हुआ। इस कथाग्रन्थ में समाहित सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों की मनोरंजक झांकियों का विशद अध्ययन कर सन् १९७५ ई. में डॉ. प्रेम सुमन जैन ने अपनी पुस्तक **'कुवलयमालाकहा का सांस्कृतिक अध्ययन'** प्रकाशित कराई थी।

- ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ

समाचार विमर्श

मुम्बई में शाकाहार का बोलबाला

''७ मई, २००५ के 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' के अनुसार मुम्बई के पॉश इलाकों में शाकाहार का भारी बोलबाला है। शाकाहारियों की बढ़ती संख्या, एकता व इच्छाशक्ति के कारण मुम्बई के विभिन्न इलाकों में मांसाहारी भोजन बिकना बन्द हो गया है। मालाबार हिल से लेकर मैरीन ड्राइव तक के इलाके में ऐसे निवासियों की बस्ती है जो पूर्णरूप से शाकाहारी हैं। इस कारण इन इलाकों में मांसाहार तो क्या, अण्डा मिलना भी मुश्किल हो गया है। यहाँ पर एक अघोषित नियम है कि फ्लैटों में वही रह सकते हैं जो शाकाहारी हैं। मल्टीनेशनल चेन 'पीजा हट' व 'डोमिनोज. पीजा' तक को मजबूरन इन स्थानों पर अपने-अपने रेस्टोरेन्टों को शाकाहारी करना पड़ा। मुम्बई-अहमदाबाद की जैट एयरवेज की फ्लाइट को यहाँ के लोग केवल शाकाहारी भोजन युक्त फ्लाइट बनाने का प्रयास कर रहे हैं, मुम्बई-अहमदाबाद शताब्दी में भी तकरीबन यही स्थिति है।''

नई दिल्ली से प्रकाशित मासिक **'वीर'** के जून २००५ के अंक में पृष्ठ १३ पर उपर्युक्त समाचार पढ़कर आश्चर्य मिश्रित आनन्द हुआ। काश अन्यत्र भी हम अपनी इच्छा शक्ति से मानव के लिये स्वाभाविक भोजन शाकाहार को ही अपना कर जिह्वा स्वाद के लिये अबोध पशु-पक्षियों के प्राणिवध के पाप से मानव समाज को बचा लें।

कुतिया की ममता ने बचाया इंसान के बच्चे को

''फानूस बनकर जिसकी हिफाजत हवा करे, वो शमा क्या बुझे जिसे रोशन खुदा करे' इस कथन को सिद्ध कर दिखाया केन्या की एक कुतिया ने। हुआ यूं कि जब माता-पिता ने अपनी ममता का गला घोंटकर दो हफ्ते की मासूम बच्ची को जंगल में मरने के लिये छोड़ दिया तब खाने की खोज में निकली इस कुतिया ने केवल बच्ची को ढूंढ़ा ही नहीं बल्कि उसकी जान बचाने का करिश्मा भी कर दिखाया। कुतिया एक मां की तरह उस बच्ची को प्यार से मुँह में दबोचकर शहर तक ले आयी और बच्ची को अपने पिल्लों के बीच लिटा दिया। **'डेली नेशन'** की सम्पादिका कैथेरिन गिचेरु ने बताया कि जब इस कुतिया की मालकिन मेरी ऐदहिम्बो को किसी छोटे बच्चे के रोने की आवाज सुनायी पड़ी तो उसने बाहर जाकर देखा। इधर-उधर ढूंढ़ने के बाद उन्हें यह बच्ची कुतिया के पिल्लों के पास काले कपड़े में लिपटी हुई मिली। वह

बच्ची को उठाकर अंदर ले आई। केन्याना नेशनल अस्पताल की महिला प्रवक्ता के अनुसार बच्ची अब खतरे से बाहर है और उसे निरंतर निगरानी में रखा जा रहा है। बच्ची के पूरी तरह से ठीक हो जाने पर उसे बच्चों के लिये कार्य करने वाले सरकारी विभाग को सौंप दिया जायेगा।''

उपर्युक्त मर्मस्पर्शी समाचार अहमदाबाद से प्रकाशित साप्ताहिक **'जिनेन्दु'** के २६ जून, २००५ अंक में पढ़ने को मिला है। निर्मोही माता-पिता से बढ़कर तो अन्जान कुतिया ही रही जो बच्ची के प्राण बचाने का हेतु बनी। काश इन्सान पशु-पक्षियों से ही इन्सानियत और करुणा का पाठ सीख ले।

बद्रीनाथ पर १६१६ किलो का निर्वाण लाडू चढ़ाया

''बद्रीनाथ/१६वें तीर्थंकर भगवान शान्तिनाथ स्वामी के निर्वाण दिवस पर १६१६ किलो का लाडू परम पूज्य मुनिश्री चैत्यसागरजी महाराज के पावन सान्निध्य में महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, दिल्ली आदि प्रान्तों से आए धर्मानुरागी भाई बहिनों व दिगम्बर जैन महासमिति मध्यांचल के १०८ सदस्यों के संघ ने निर्वाण लाडू चढ़ाया।''

जयपुर से प्रकाशित पाक्षिक 'समन्वय वाणी' के जुलाई द्वितीय पक्ष २००५ के अंक में पृष्ठ ८ पर प्रकाशित उपर्युक्त समाचार को पढ़कर हमें आश्चर्य नहीं हुआ, क्योंकि गत वर्ष भ. पार्श्वनाथ के मोक्ष कल्याणक पर कैलाशनगर (दिल्ली) के पार्श्वनाथ जिन चैत्यालय फिरोजाबाद से सपरिवार पधारे एक श्रावक श्रेष्ठी जी ने २३ कि.ग्रा. का शुद्ध लाडू पूज्य गणिनी विशुद्धमती जी ससंघ के समक्ष ताण्डव नृत्य करके चढ़ाया था और इन्दौर में भगवान महावीर स्वामी के निर्वाण महोत्सव में १००८ किलो का लाडू चढ़ाया गया था। इस सम्बन्ध में शोधादर्श-५४ में पृ. ५६ पर प्रकाशित 'समाचार विमर्श' दृष्टव्य है। निर्वाण लाडू के परिमाण में इस प्रकार होती जा रही वृद्धि हमारी समाज की सोच और उसकी अर्थ-व्यय-क्षमता की प्रगति की सूचक प्रतीत होती है। यदि तीर्थंकरों के क्रमांक के अनुसार उनको अर्पित किये जाने वाले निर्वाण लाडू का वजन इस प्रकार निर्धारित होने लगेगा तो कदाचित् आगामी महावीर निर्वाण उत्सव पर हम कहीं २४२४ किलो का लाडू चढ़ाने का समाचार पायें और बेचारे आदिनाथ ऋषभदेव केवल १०१ किलो के लाडू पर सिमट कर रह जायें। और हम तीर्थंकरों के साथ इस प्रसंग में परस्पर भेदभाव अपनाने के भागी बनें।

कहा जाता है कि जैन मन्दिरों में चढ़ाया जाने वाला द्रव्य निर्माल्य होता है और उसका उपयोग घोर पापकर्म का बन्ध करता है। यदि ऐसा है, तो हमारी अल्पमति

यह समझने में अक्षम है कि इतनी विपुल खाद्य सामग्री का, जबकि देश में आज भी दो जून रोटी का जुगाड़ कठिनाई से कर पाने वाले परिवारों की भरमार है, अपव्यय क्यों किया जा रहा है? हमें लगता है कि यह धनिक श्रावकों की अपनी मानपुष्टि और आत्मतुष्टि के लिये है और इसमें प्रेरक हमारे पूज्य महाराजश्री और आर्यिका माताश्री हैं। हमारी अल्प समझ में निर्वाण उत्सव में निर्वाण के प्रतीक शून्य के आकार के एक नारियल का प्रत्येक जिन मन्दिर में चढ़ाया जाना भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना असीम परिमाण के लाडू का चढ़ाया जाना और इसमें किसी प्रकार की हिंसा भी निहित नहीं है। और यदि उपर्युक्त प्रकार से बड़े परिमाण में निर्वाण लाडू चढ़ाया जाना ही अभीष्ट हो तो उस लाडू को अन्न जुटाने के लिये कष्ट कर रहे व्यक्तियों को क्षुधा तृप्ति हेतु वितरित किया जाना ही श्रेयस्कर है ताकि खाद्यान्न का सही उपयोग हो सके।

-रमा कान्त जैन

स्वास्थ्य चर्चा

पावस ऋतु (बरसात का मौसम) आ गई है। मनुष्य की पाचन शक्ति इस मौसम में प्रायः मन्द हो जाती है, उसे कब्ज, अपच आदि की शिकायतें होने लगती हैं। आँतों की पाचनशक्ति को सही रखने हेतु हर्र, बहेड़ा और आंवला की सोंठ पकाकर भोजन में यदि नित्यप्रति सेवन की जाय तो वह लाभकार होती है। सूखा आंवला ८ टुकड़े, हर्र और बहेड़ा के एक-एक टुकड़े पानी में डालकर उनमें आवश्यकतानुसार नमक, जीरा और हींग मिलाकर आग पर पका लें।

सौंफ पीसकर रख लेवें और सुबह दोपहर व शाम को एक-एक चम्मच जल के साथ लें उससे भी कब्ज दूर हो जाता है।

मल के साथ रक्त आने की शिकायत होने पर खून रोकने के लिए अमरूद और बबूल की पत्तियां बराबर-बराबर मात्रा में लेकर कूट पीस लेवें और फिर उनकी चने के दाने के बराबर गोलियां बना लेवें। सुबह, दोपहर और शाम दो-दो गोली जल के साथ लेवें, तो खून आना बन्द हो जायेगा।

- श्रीमती आशा जैन

काव्य-संध्या डॉ. ज्योति प्रसाद जैन के नाम

११ जून को ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ में इतिहास-मनीषी, विद्यावारिधि डॉ. ज्योति प्रसाद जैन की १७वीं पुण्यतिथि पर उनका पुनीत स्मरण करने हेतु वयोवृद्ध साहित्यकार श्री गयाप्रसाद तिवारी 'मानस' की अध्यक्षता में काव्य-संध्या आयोजित हुई। डॉ. परमानन्द जड़िया मुख्य अतिथि रहे। संचालन श्री रमा कान्त जैन ने किया।

श्रद्धेय डाक्टर साहब के चित्र पर माल्यार्पण, दीप प्रज्ज्वलन तथा श्रीमती मंजरी जैन, मोहिनी जैन, अलका अग्रवाल और निधि जैन द्वारा डाक्टर साहब द्वारा रचित **'वीतराग स्वरूपम्'** और **'जय महावीर नमो'** के समवेत गायन, डॉ. शैलेन्द्र शुक्ल द्वारा वाणी-वन्दना एवं कु. पलक द्वारा गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर की रचना **'प्रभु'** के गायन के साथ कार्यक्रम का शुभारम्भ हुआ। डॉ. शशि कान्त ने डाक्टर साहब को अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हुए उनकी इतिहास-दृष्टि पर प्रकाश डाला और श्री अंशु जैन ने उनके व्यक्तित्व और कृतित्व का परिचय दिया। सर्वश्री नरेशचंद्र जैन, डी. के. जैन, एम. पी. जैन, लूणकरण नाहर जैन और भगवान भरोसे जैन ने डाक्टर साहब सम्बन्धी संस्मरण सुनाते हुए, उनकी विद्वत्ता की सराहना की तथा उनके सरल स्नेही स्वभाव, मार्गदर्शक एवं प्रोत्साहनदाता स्वरूप को रेखांकित किया। श्री नाहर ने राजस्थानी भाषा में और श्री भगवान भरोसे ने ब्रज में आध्यात्मिक भजन सुनाये। डॉ. शिवभजन कमलेश, डॉ. सुरेश प्रकाश शुक्ल, श्री रवि अवस्थी, डॉ. शैलेन्द्र शुक्ल, श्री जगत नारायण पाण्डेय, श्री प्रेमचंद सैनी, श्री वीरेन्द्र अंशुमाली, श्री जयरामदास रस्तोगी और श्री के. के. शर्मा अनपढ़ ने अपनी रससिक्त रचनाओं से श्रोताओं का मन लुभाया तथा इंजी. राजीव कान्त एवं डॉ. शशि कान्त ने अपनी रचनाओं से चिन्तन के लिये सामग्री दी। बालिका तन्वी ने शास्त्रीय संगीत में भजन प्रस्तुत किया। कु. शगुन ने श्रद्धेय डाक्टर साहब की रचना **'करे अमल जो उसकी जयजयकार है'** तथा कु. अरुषा एवं कु. पलक ने **'चिर स्वतन्त्र भारत के जन'** रचना का वाचन किया। श्री अनिल बांके, श्री रमा कान्त और मानस जी ने अपनी हास्य-व्यंग्यपूर्ण रचनाओं से सबको प्रफुल्लित किया। डॉ. जड़िया ने श्रद्धेय डाक्टर साहब को भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की। राष्ट्र वन्दना के साथ कार्यक्रम का समापन हुआ।

श्रुत पंचमी और शोध पुस्तकालय स्थापना दिवस

ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी, रविवार, १२ जून, २००५ ई. को प्रातःकाल तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र., के लखनऊ स्थित शोध पुस्तकालय में श्री लूणकरण नाहर जैन की अध्यक्षता में मंगलाचरण स्वरूप जिनवाणी की वन्दना और सरस्वती पूजन के साथ **श्रुत पंचमी पर्व** और **शोध पुस्तकालय स्थापना दिवस** कार्यक्रम का शुभारंभ हुआ। कार्यक्रम का संचालन संयुक्त मंत्री श्री रमा कान्त जैन ने किया। सर्वप्रथम इस पर्व के ऐतिहासिक महत्व तथा इस दिन २६ वर्ष पूर्व १६७६ ई. में स्थापित इस शोध पुस्तकालय के सम्बन्ध में समिति के महामंत्री श्री अजित प्रसाद जैन, जो अस्वस्थतावश उपस्थित नहीं हो सके थे, के आलेख **'जयति श्रुतदेवता'** का वाचन हुआ। इसी क्रम में डॉ. शशि कान्त ने अपने उद्बोधन में दिगम्बर आम्नाय में मान्य श्रुत पंचमी पर्व और श्वेताम्बर परम्परा में मान्य ज्ञान पंचमी पर्व (भाद्र शुक्ल पंचमी) की ऐतिहासिकता पर विशद प्रकाश डाला और शास्त्रों का स्वाध्याय युक्तियुक्त ढंग से करने पर बल दिया। श्रीमती कामिनी जैन ने **'तुमसे लागी लगन, ले लो अपनी शरण, पारस प्यारा'** भजन सुनाया। तदनन्तर शोध पुस्तकालय के उन्नयन के सम्बन्ध में सर्वश्री नरेश चंद्र जैन, महेन्द्र प्रसाद जैन, लूणकरण नाहर जैन, राजीव जैन और अजित प्रताप सिंह ने अपने विचार व्यक्त किये। चर्चा में डॉ. शशि कान्त और श्री कन्हैयालाल जैन ने भी भाग लिया। श्री लूणकरण नाहर जैन ने अपना भजन **'मिलता है सच्चा सुख केवल भगवान तुम्हारे चरणों में'** सुनाकर वातावरण रससिक्त किया। अन्त में जिनवाणी की स्तुति के साथ कार्यक्रम का समापन हुआ। प्रभावना वितरण का पुण्यलाभ श्री संजय नाहर ने लिया।

वीर शासन जयन्ती

चौबीसवें तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर स्वामी द्वारा ईसा पूर्व ५५७ की श्रावण कृष्णा प्रतिपदा को राजगृह के विपुलाचल पर्वत पर अपने प्रथम धर्मोपदेश से किये गये धर्म-चक्र-प्रवर्तन की स्मृति में २२ जुलाई को तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र., के चारबाग, लखनऊ, स्थित शोध पुस्तकालय में श्री लूणकरण नाहर जैन की अध्यक्षता में 'वीर शासन जयन्ती' मनायी गई। कार्यक्रम का संचालन श्री रमा कान्त जैन ने किया। मंगलाचरण स्वरूप **'महावीराष्टक स्तोत्र'** के सामूहिक गायन के साथ कार्यक्रम का शुभारम्भ हुआ। श्री रमा कान्त जैन ने इतिहास-मनीषी (स्व.) डॉ. ज्योति प्रसाद जैन के आलेख **'जीयात् श्री वीरनाथस्य शासनम्'** का वाचन किया। तदनन्तर डॉ. शशि कान्त, डॉ. पूर्णचन्द्र जैन, श्री रोहित कुमार जैन, श्री प्रकाश चन्द्र 'दास' तथा श्री भगवान भरोसे जैन ने वीर शासन जयन्ती के महत्व पर प्रकाश डाला। श्री रोहित कुमार ने अपनी काव्य-रचना **'दिव्य देशना वीर प्रभु की'** का पाठ किया। श्री भगवान भरोसे ने स्व. फूलचन्द जैन 'पुष्पेन्दु' द्वारा रचित **'महावीर सन्देश'** की तथा श्री लूणकरण नाहर ने मुनि चौथमल द्वारा रचित भजन **'जो आनन्द मंगल चाहो रे, मनावो महावीर'** की प्रस्तुति की। पं. जुगल किशोर मुख्तार **'युगवीर'** द्वारा रचित **'महावीर सन्देश'** के गायन के साथ कार्यक्रम का समापन हुआ। प्रभावना वितरण का पुण्य लाभ श्री लूणकरण नाहर जी ने लिया।

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति के नये महामंत्री और संयुक्त मंत्री

१० जुलाई, २००५ ई. को सम्पन्न तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र., की प्रबन्ध समिति की बैठक में समिति के महामंत्री श्री अजित प्रसाद जैन जी के दिनांक २५ जून, २००५ ई. को हुए निधन से हुई रिक्ति की पूर्ति हेतु सर्वसम्मति से उनके स्थान पर वर्तमान संयुक्त मंत्री श्री रमा कान्त जैन को समिति का महामंत्री तथा उनकी रिक्ति में प्रबन्ध समिति के सदस्य श्री नलिन कान्त जैन को संयुक्त मंत्री मनोनीत किया गया।

समाचार विविधा

एशियाटिक सोसायटी, कोलकाता द्वारा प्राकृत और जैन विद्या पर राष्ट्रीय संगोष्ठी

११-१२ मार्च, २००५ ई. को एशियाटिक सोसायटी, कोलकाता द्वारा प्राकृत और जैन विद्या पर एक राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया जिसमें कोलकाता, दिल्ली, अहमदाबाद, नागपुर, जोधपुर, लाडनूं, बैंगलोर, अमृतसर आदि स्थानों से पधारे विद्वानों ने भाग लिया। संगोष्ठी में प्राकृत भाषा एवं साहित्य के वैशिष्ट्य तथा जैन दर्शन के अनेकान्तवाद, गुणस्थान, ज्ञान, गणधरवाद आदि विषयों पर १४ शोधपत्र प्रस्तुत हुए। संगोष्ठी का संयोजन विद्वान मनीषी डॉ. सत्यरंजन बनर्जी ने किया। एशियाटिक सोसायटी की स्थापना सन् १७८४ ई. में सर विलियम जोन्स द्वारा की गई थी। सोसायटी द्वारा इस प्रकार की संगोष्ठी प्रथम बार आयोजित हुई।

जैन विद्या संगोष्ठी एवं पुरस्कार समर्पण समारोह

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ इन्दौर द्वारा जैन विद्या संगोष्ठी एवं पुरस्कार समर्पण समारोह का आयोजन १२ से १४ मार्च २००५ को किया गया। उद्घाटन एव समापन सत्र के अतिरिक्त चार तकनीकी सत्रों में १७ शोध पत्रों का वाचन हुआ। कार्यक्रम का संयोजन प्रो. एस. के. बंडी, श्री अरविंद कुमार एवं श्री मानकचंद जैन ने संयुक्त रूप से किया।

'जैन पत्रकारिता के सम्मुख उपस्थित चुनौतियां' विषय पर पत्रकार सम्मेलन में वरिष्ठ पत्रकारों ने अपने विचार व्यक्त किये।

१३ मार्च को **श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन, फिरोजाबाद** को उनके आलेख संग्रह **'समय के शिलालेख'** एवं **'चिन्तन प्रवाह'** पर **कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार-२००३** से पुरस्कृत किया गाय। साथ ही **डॉ. जी. जवाहरलाल (राजमुंदरी)** को उनकी कृति 'Jainism in Andhra (As dedpicted in Inscriptions)' पर **ज्ञानोदय पुरस्कार-२००२** एवं वयोवृद्ध विद्वान **श्री रामजीत जैन, एडवोकेट, ग्वालियर** को उनकी कृति **'गिरनार माहात्म्य'** पर **ज्ञानोदय पुरस्कार-२००३** से सम्मानित किया गया। **अर्हत् वचन पुरस्कार-२००३** के अन्तर्गत **डॉ. अनिल कुमार जैन, अहमदाबाद, डॉ. रमेश जैन, भोपाल** एवं **श्री नरेश पाठक, देवास** को क्रमशः प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

लन्दन में जैन कानून एवं जैन समाज पर कार्यशाला

१७ मार्च को लन्दन विश्वविद्यालय के धार्मिक अध्ययन केन्द्र द्वारा 'जैन कानून एवं जैन समाज' विषय पर एक कार्यशाला आयोजित हुई। कार्यशाला में 'जैन इतिहास की समस्याएं' विषय पर डॉ. एम. ए. ढाकी ने, 'भारतीय न्यायालयों में जैन धर्म' पर मि. पीटर फ्यूजल ने, 'भारतीय न्यायालयों में जैन समाज के मुद्दे' विषय पर श्री प्रकाश झवेरी ने, "जैन न्याय-व्यवस्था का दण्ड विधान के संदर्भ में अध्ययन' विषय पर श्री लेखराज मेहता ने अपने शोध-पत्र प्रस्तुत किये। साथ ही मि. बर्नर मेन्सकी ने 'जैन कानून और रीति रिवाज', श्री बाल पाटिल ने 'जैन अल्पसंख्यक के अधिकार और भारतीय धर्म निरपेक्षता', मि. टोर्कस ब्रेके ने 'संविधान सभा के वाद में धर्म और रिलीजन' तथा मि. लिन फाउलस्टन ने 'खण्डगिरि एवं उदयगिरि की पहाड़िया' पर शोध-पत्र पढ़े। और येल विश्वविद्यालय के मि. फिलिप ग्रेनॉफ ने "Protecting the faith : exploring the concern of Jain Monastic Rules" विषय पर व्याख्यान दिया।

अफ्रीका में अन्तर्राष्ट्रीय जैन सम्मेलन

२६ अप्रैल से २ मई तक नैरोबी के ओसवाल सेन्टर में अन्तर्राष्ट्रीय जैन सम्मेलन हुआ जिसमें ६०० व्यक्तियों ने सहभागिता की। सम्मेलन में जैन धर्म के सामने वर्तमान परिवेश में आ रही चुनौतियों पर चिन्तन किया गया। अफ्रीकन कला के माध्यम से एक प्रदर्शनी लगाई गई। केनिया के सूखा ग्रस्त क्षेत्रों में पानी की आपूर्ति हेतु १०० पानी के कुएं बनवाने का संकल्प लिया गया। सम्मेलन में पर्यावरण सुधारक डॉ. एन. पी. जैन और डॉ. अतुल शाह ने स्लाइड शो द्वारा जैन धर्म के सिद्धान्तों को प्रदर्शित किया।

संघी जी के मंदिर के मूल स्वरूप में परिवर्तन नहीं किया जा सकता राजस्थान उच्च न्यायालय का महत्वपूर्ण फैसला

राजस्थान उच्च न्यायालय की खण्डपीठ ने १२ मई, २००५ को फैसला दिया है कि सांगानेर स्थित प्राचीन दिगम्बर जैन मंदिर संघी जी संरक्षित स्मारक है और उसके मूल स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता।

डॉ. गुलाबचंद्र चौधरी स्मारक व्याख्यानमाला का शुभारंभ

१३ मई को प्राकृत जैन शास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान, वैशाली के पूर्व निदेशक डॉ. गुलाबचन्द्र चौधरी, जो जैन इतिहास, पुरातत्व, अभिलेख शास्त्र के

साथ-साथ व्याकरण और पालि-प्राकृत आदि प्राच्य भाषाओं के अधिकारी विद्वान थे, की स्मृति में संस्थान में एक व्याख्यानमाला का शुभारंभ किया गया। उक्त कार्यक्रम वयोवृद्ध पत्रकार एवं दार्शनिक श्री आनन्द भैरव शाही की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। इस व्याख्यानमाला की प्रथम कड़ी के रूप में संस्थान के निदेशक डॉ. ऋषभचन्द जैन का 'डॉ. गुलाबचन्द चौधरी और जैन विद्या' विषयक व्याख्यान हुआ।

जैन शास्त्रों/ग्रन्थों को बचाने की योजना

डॉ. ओमप्रकाश अग्रवाल जैन, एच.आई.जी. ४४, सेक्टर ई. अलीगंज योजना, लखनऊ-२२६०२४ (फोन : ३७७८१४, ३७६८५८) ने अवगत कराया है कि इन्टैक भारतीय सांस्कृतिक निधि ने जैन शास्त्रों/ग्रन्थों को बचाने की योजना बनाई है जिसके अन्तर्गत निम्न कार्य किये जायेंगे :

१. ग्रन्थों और ग्रन्थागारों का सर्वेक्षण और सूचीकरण- इस कार्य के लिये प्रशिक्षित व्यक्तियों का दल तैयार किया जायेगा।

२. कुछ बड़े-बड़े स्थानों पर जहां अनेक ग्रन्थागार हैं वहाँ ग्रन्थों के प्रतिरोधात्मक संरक्षण विषय पर त्रिदिवसीय कार्यशालायें होंगी। इन कार्यशालाओं में शास्त्रों के रख-रखाव संबंधी प्रशिक्षण दिया जायेगा। इसमें वह सभी महानुभाव गृहणियां, युवक, युवतियां जो अपना थोड़ा सा भी समय पूज्य ग्रन्थों के बचाव के पुनीत कार्य के लिए दे सकते हों, भाग ले सकते हैं। प्रशिक्षण भारतीय सांस्कृतिक निधि के विशेषज्ञ करेंगे।

३. जीर्ण शास्त्रों का उपचार-अनेक ऐसे ग्रन्थ होते हैं जो विभिन्न कारणों से कमजोर होते जाते हैं और उन्हें उपचार की आवश्यकता होती है।

यह काम संरक्षण विशेषज्ञ करेंगे। कुछ स्थानीय व्यक्तियों की सहायता से यह कार्य वहीं होगा जहां ग्रन्थ हैं। इस कार्य में सहायता हेतु उन्होंने निम्नांकित अपेक्षाएं की हैं :-

आपकी जानकारी में जहाँ भी ग्रन्थ हों उनके बारे में उन्हें सूचना भेजें। ग्रन्थ सूचीकरण में सहायता करें।

ग्रन्थों के रखरखाव के लिये प्रत्येक सप्ताह या प्रतिदिन कुछ समय निकालें। इस काम के लिये आवश्यक जानकारी आपको दी जायेगी। यदि आप स्वयं ग्रन्थों के उपचार में भाग ले सकें तो और उत्तम होगा।

उन्होंने यह भी सूचित किया है कि इस काम को सुचारु रूप से करने के लिये एक समिति का गठन किया जा रहा है और अपेक्षा की है कि उसके सदस्य बनकर सहयोग दें।

सूचना

महावीर पुरस्कार वर्ष २००५ एवं ब्र. पूरणचन्द रिद्धिलता लुहाड़िया पुरस्कार २००५

प्रबन्धकारिणी कमेटी, दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी द्वारा संचालित जैनविद्या संस्थान, श्री महावीरजी के वर्ष-२००५ के महावीर पुरस्कार के लिए जैन धर्म, दर्शन, इतिहास, साहित्य, संस्कृति आदि से संबंधित किसी भी विषय की पुस्तक/शोध प्रबन्ध की **चार प्रतियां ३० सितम्बर २००५ तक** आमंत्रित हैं। इस पुरस्कार में प्रथम स्थान प्राप्त कृति को २१००१/- एवं प्रशस्ति पत्र प्रदान किया जायेगा तथा द्वितीय स्थान प्राप्त कृति को ब्र. पूरणचन्द रिद्धिलता लुहाड़िया साहित्य पुरस्कार ५००१/-एवं प्रशस्ति पत्र प्रदान किया जायेगा। ३१ दिसम्बर, २००१ के पश्चात् प्रकाशित पुस्तक ही इसमें सम्मिलित की जा सकती है। नियमावली तथा आवेदन पत्र का प्रारूप प्राप्त करने के लिए संस्थान कार्यालय, दिगम्बर जैन नसियां भट्टारकजी, सवाई रामसिंह रोड, जयपुर-४ से पत्र व्यवहार करें।

स्वयंभू पुरस्कार-२००५

दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी द्वारा संचालित अपभ्रंश साहित्य अकादमी, जयपुर के वर्ष-२००५ के स्वयंभू पुरस्कार के लिए अपभ्रंश से संबंधित विषय पर हिन्दी अथवा अंग्रेजी में रचित रचनाओं की **चार प्रतियां ३० सितम्बर, २००५ तक** आमंत्रित हैं। इस पुरस्कार में २१००१/- एवं प्रशस्ति पत्र प्रदान किया जायेगा। ३१ दिसम्बर, २००१ से पूर्व प्रकाशित तथा पहले से पुरस्कृत कृतियां सम्मिलित नहीं की जायेंगी। नियमावली तथा आवेदन पत्र का प्रारूप प्राप्त करने के लिए अकादमी कार्यालय, दिगम्बर जैन नसियां भट्टारकजी, सवाई रामसिंह रोड, जयपुर-४ से पत्र व्यवहार करें।

अब आगे से महामंत्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र., से सम्बन्धित समस्त पत्र-व्यवहार ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ-२२६००४ के पते पर ही किया जाये। साथ ही शोधादर्श के शुल्क हेतु मनीआर्डर अथवा चैक/बैंक ड्राफ्ट, जो लखनऊ में ही देय हो, भी समिति के महामंत्री को उपर्युक्त पते पर भेजे जायें। मनीआर्डर भेजने की सूचना पोस्टकार्ड से भी अपना पूरा नाम-पता अंकित करते हुये दी जाये। शोधादर्श में प्रकाशनार्थ समस्त सामग्री और समीक्षार्थ पुस्तक/पत्रिका भी सम्पादक को उपर्युक्त पते पर ही भेजी जाय। महामंत्री श्री रमा कान्त जैन का फोन नं. है- २४५२०६४।

साहित्य सत्कार

(१) पंडित जी (पंडित फूलचन्द्र सिद्धान्त शास्त्री के जीवन तथा कार्यों पर एक दृष्टि) : संपादन-डॉ. प्रेमचंद जैन, डॉ. अशोक कुमार जैन, डॉ. कपूरचंद जैन, एवं श्रीमती नीरजा जैन; प्र. राष्ट्रीय प्राकृत अध्ययन एवं संशोधन केन्द्र, श्री धवल तीर्थम्, श्रवणबेलगोला-५७३१३५; २००४ ई.; बड़ा आकार; पृ. २७०

पंडित फूलचन्द्र सिद्धान्त शास्त्री की जन्म शताब्दी के निमित्त से उनके सुपुत्र डॉ. अशोक कुमार जैन (प्रोफेसर, आई.आई.टी., रुड़की) और पुत्रवधु श्रीमती नीरजा जैन द्वारा यह स्मृतिग्रन्थ प्रस्तुत किया गया है। इसकी प्रति उन्होंने सिद्धान्ताचार्य पं. फूलचन्द शास्त्री फाउण्डेशन, २०३/५, सरस्वती कुंज, रुड़की-२४७६६७, के सौजन्य से हमें उपलब्ध कराई है, जिसके लिए हम आभारी हैं।

पंडित जी २०वीं शताब्दी के एक युगपुरुष थे। अप्रैल १६०१ में जन्मे और ३१ अगस्त, १६६१ को दिवंगत पंडित जी ने प्रायः पूरी २०वीं शती जी। अपनी ६० वर्ष की वय में से प्रायः ७० वर्ष वह सक्रिय रहे। नीरजा जी ने अपने पितृ-तुल्य श्वसुर का वस्तुपरक जीवन वृत्त २२ पृष्ठों में दिया है। हमने पंडित जी के विषय में प्रायः जाना था क्योंकि पंडित कैलाशचंदजी और पं. खुशालचंद गोरावाला पिता जी डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन से मिलने आया करते थे और पंडित जी के विषय में भी चर्चा होती थी, परन्तु कभी मिलने का सुयोग नहीं हुआ था। पंडित जी का स्वकथन भी सम्मिलित है। डॉ. प्रेमचंद जैन, पं. अमृतलाल शास्त्री, पं. भुवनेन्द्रकुमार शास्त्री और डॉ. नंदलाल जैन के भी संस्मरणात्मक लेख सम्मिलित हैं। उन सबसे विदित होता है कि बिना किसी औपचारिक शिक्षा की सुविधा के, केवल अपने अध्यवसाय और लगन के बल पर, एक व्यक्ति किस प्रकार विद्वत्ता के शिखर पर पहुंच सकता है। सारा जीवन आर्थिक विपन्नता में बीता, काया भी रुग्ण रही और सहधर्मिणी भी अस्वस्थ रहीं - तो भी मनीषा स्थिर रही और मनन-चिंतन-लेखन अनवरत चलता रहा, सामाजिक धार्मिक क्षेत्रों के विवाद भी चलते रहे, परिवार के दायित्वों का निर्वहन भी होता रहा। डॉ. अशोक कुमार उनके एकमात्र सुपुत्र थे जो १६७६ में सेवायोजित हुए और १६८० में नीरजा जी के साथ पारिवारिक सूत्र में बंधे, अतः पंडित जी ७८-७६ की वय में ही अपने को परिवार के दायित्व से मुक्त मान सके। पंडित जी के जीवन का यह एक विशेष प्रेरणास्पद पहलू है।

इस ग्रन्थ में प्रस्तुत पंडित जी की महत्वपूर्ण रचनाओं की सूची और १९४६ से १९८१ के बीच उनको लिखे गये तथा उनके द्वारा लिखे गये ९४ पत्रों की प्रतिलिपि शोधकर्ताओं और अध्येताओं के लिए विशेष उपयोगी हैं। वंशावली और चित्रावली ग्रन्थ को रोचकता प्रदान करते हैं।

जो ज्ञातव्य इस ग्रन्थ के माध्यम से पंडित जी के विषय में प्राप्त होता है, वह उनके व्यक्तित्व को प्रणम्य सूचित करता है। आत्मा की अमरता के विषय में तो निश्चय नहीं है। उनके व्यक्तित्व और कृतित्व की जो स्मृति है उसके प्रति हमारा श्रद्धापूर्वक नमन है।

(२) **SATKHANDAGAMA - DHAVALA - JIVASTHANA - SAT-PRARUPANA - 1 :** English translation by Dr. Nandlal Jain, Editor - Dr. Ashok Kumar Jain; pub. Pandit Phool Chandra Shastri Foundation, 203/5, Saraswati Kunj, I.I.T.Campus, Roorkee - 247667 / Shri Ganesh Varni Digambara Jain Sansthan, Naria, Varanasi - 221005; 2004 A.D.; pp. lxvii +336.

Sat-prarupana or Enunciation of Existence is 1st part of **Jivasthana** or States of Jiva, which forms the 1st volume of the **Satkhandagama** or the Six-Volume Canon. It was composed by Acharya Shri Puspadanta and Bhutabali in the 2nd century A.D., some time after 683 years had elapsed since the Nirvana of Tirthankara Mahavira. The **Dhavala** commentary on it was written by Acharya Shri Virasena in the 9th century A.D.

Theory of Karma is the corner-stone of Jain philosophy. **Satkhandagama** is the oldest available definitive formulation of the Theory of Karma. It has been treated in 16 volumes in the **Dhavala**. The instant volume is the first volume of the **Dhavala.** The English translation by Dr. Nandlal Jain is based on the Hindi translation of the **Dhavala** commentary done by the late Pt. Phool Chandra Shastri (1901-91). It carries the original text of the **Sat-prarupana**.

The Prologue by Dr. Ashok Kumar Jain helps to get an insight into the life-long self-less devotion of his father Pt. Phool Chandra ji to the cause of bringing to light these scriptures. It is revealing to

know that there was a conspiracy to deprive him of the credit due to him for his labour of devotion.

In the 1920's English translations of some canonical works were published as **Sacred Books of the Jains** series. Again, the idea of publishing English translation of the Jain Canons was floated by Dr. N.L.Jain in 1995, and it was taken up by Dr. Ashok Kumar Jain in November 1996 who constituted National Advisory Committee for the National Project on English Translations of Jain Canonical Texts. I was included in the Committee. Dr. Ashok also proposed to undertake publication from Pt. Phool Chandra Shastri Foundation set up by him in memory of his father.

Dr. N.L.Jain translated **Dhavala Book One**. Reading, evaluation and editing of the translation was done at Roorkee thrice in February 1997, July 1998 and September 2000, and another 5 years went by in giving it the present final form. The Prologue by Dr. A.K.Jain dwells upon the birth-pangs.

Besides the Translation, Appendices, Glossary and Index, the Introduction by Dr. N.L. Jain, running into 49 pages, is a very valuable contribution for a proper appraisal of the Jain Canonical literature. The subject is highly technical and any comments on the contents or language of translation would not be appropriate.

Dr. N.L.Jain for his painstaking job and Dr. Ashok for his unstinted co-operation deserve congratulations from the scholarly world.

(3) THE JAINA WAY OF LIFE : by Dr. Anang Pradyumna Kumar; pub. Research Books, B-5/263, Yamuna Vihar, Delhi-110053/Megh Prakashan, 239, Dariba Kalan, Delhi-110006; 1st ed., 2004; pp. 212.

The author Dr. Anang Pradyumna Kumar is a reputed scholar of comparative philosophy - the traditional Indian systems as well as the modern thought. His deep insight into the Jaina scriptures, rituals and practices, particularly of the Digambara sect, is very well reflected in the instant study : *The Jaina Way Of Life.*

The chief concern of writing this treatise, according to the

author, is to make easy access to the Jaina way of life vis-a-vis multiple challenges posed by modern style of living, thinking and believing. The study is presented in 11 sections; the section is called Style; summary is appended at the end of each Style. In the Preface and Introduction at the beginning the author has indicated his objective and scheme. At the end is Index of Technical terms and names, which also helps in comprehending the peculiar Jaina terminology.

The exposition comprises : the basic approach of Jaina faith; the rational approach of Jaina way; the fundamental approach of Jaina way; the practical approach of Jaina sadhana; the dietetic approach of Jaina way; the philosophical approach of Jainism; the ritualistic approach of Jaina way; the sexualogical approach of Jaina way; the cosmic approach of Jaina way: the pragmatic approach of Jaina way; and the Utopian approach of Jaina way of life. Thus the author has very deftly tried to cover the entire gamut of the Jaina faith, doctrine and ritual in a rather succinct manner.

He is nowhere critical of the basics or the traditional. In a way, the approach is orthodox, justifying the Jaina way as has been handed down. The presentation provides a general glimpse of the religious system, known as Jainism, in its various facets and would enable a general reader to be acquainted with the Jaina philosophy, religion and tradition as is believed and practised by a *naisthika sravaka*, i.e., a devout lay follower, particularly of the Digambara leaning. Dr. Anang Pradyumn Kumar deserves compliments for his exposition.

- Dr. Shashi Kant

(४) **समयसार (समयप्राभृत) खण्ड-१** : हिन्दी टीकाकार पं. मोतीलाल कोठारी तथा सम्पादक ब्र. संदीप 'सरल'; प्र. अनेकान्त ज्ञानमंदिर शोध संस्थान, बीना (सागर); द्वि.सं. २००४ ई.; पृ. ७१३+१३

प्रथम शती ईस्वी में हुए आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा ४१५ प्राकृत गाथाओं में रचित **समयसार** अपरनाम **समयप्राभृत**, जिसमें शुद्ध आत्मा के यथार्थ स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है, पर लगभग नवी शती ईस्वी में हुए आचार्य अमृतचन्द्र सूरि ने संस्कृत

में **आत्मख्याति टीका** और स्वतन्त्र रूप से २७८ पद्यों में **समयसार कलश** की रचना की थी। तदनन्तर दसवी शती ईस्वी में हुए आचार्य जयसेन ने **समयसार** की गाथाओं पर **तात्पर्यवृत्ति** नाम से टीका रची। हिन्दी में भी पाण्डे राजमल्ल ने **बालबोधिनी टीका** और बनारसीदास जी ने **समयसार नाटक** की रचना की थी। गत शताब्दी में फलटण निवासी सिद्धान्त मर्मज्ञ **पं. मोतीलाल कोठारी** ने **समयसार** ग्रन्थ का गहन अध्ययन करने के उपरान्त अमृतचन्द्रीय **आत्मख्याति टीका** पर संस्कृत में **तत्त्वप्रबोधिनी टीका** लिखने और हिन्दी में उसके अनुवाद और विवेचन का दुष्कर कार्य किया।

यूं तो ग्रन्थराज **समयसार** के अनेक संस्करण विभिन्न स्थानों से प्रकाशित हुए हैं, किन्तु आलोच्य कृति, जिसमें उक्त ग्रन्थ के मात्र **जीव एवं अजीव** अधिकार का विवेचन है, की विशेषता यह है कि इसमें मूल गाथाएं, उनका अन्वय एवं अन्वयार्थ उपर्युक्त **आत्मख्याति टीका, तत्त्व प्रबोधिनी टीका** और **तात्पर्यवृत्ति टीका** तथा पं. कोठारी जी कृत हिन्दी रूपान्तर के साथ दिया गया है। इस प्रकार इस गूढ़ विषय को अध्यात्म रसिकों के लिये सुबोध करने का प्रयास किया गया है। इस कृति का प्रथम संस्करण १९६९ ई. में फलटण से प्रकाशित हुआ था जिसे सम्पादित कर ब्र. संदीप 'सरल जी' ने अब पुनः विषय के अध्येताओं के लाभार्थ प्रकाशित किया है, जिसके लिये वह साधुवाद के पात्र हैं।

(५) असहमत- संगम : मूल लेखक बैरि. चम्पतराय जैन तथा हिन्दी अनुवादक श्री कामताप्रसाद जैन, बरेली; प्र. सर्वोदय विद्यापीठ, जयपुर रोड, मदनगंज-किशनगढ़-३०५४०१ (अजमेर-राजस्थान); द्वि.सं. २००४; पृ. ३३२

शकुन प्रकाशन, नई दिल्ली, के सौजन्य से प्राप्त उपर्युक्त कृति बैरिस्टर चम्पतराय जैन द्वारा अंग्रेजी में रचित Confluence of Opposites जो जनवरी १९२२ में प्रकाशित हुई थी, का हिन्दी रूपान्तरण है। सर्वधर्म समन्वय की दृष्टि से लिखी गई यह कृति आज भी प्रासंगिक है। इसे पाठकों को हिन्दी में सुलभ कराने हेतु अनुवादक और प्रकाशक साधुवाद के पात्र हैं।

(६) रतनदीप : प्रधान सम्पादक डॉ. सत्यव्रत शास्त्री; प्रः पंडित रतनचन्द भारिल्ल अभिनन्दन समारोह समिति; प्र.सं. १६ जनवरी, २००५; पृ. ५९५ (सचित्र)

प्रकाण्ड विद्वान अध्यात्म रत्नाकर पण्डित रतनचन्द्र भारिल्ल जी को उनके ७२वें जन्मदिन पर उनके प्रशंसकों द्वारा उन्हें समर्पित यह विशालकाय भव्य ग्रन्थ उनकी गरिमा के अनुरूप है। ग्रन्थ आठ खण्डों में विभाजित है। प्रथम खण्ड में जहाँ पूज्य

गुरुवरों के मंगल आशीष एवं शुभकामनाएं हैं वहीं द्वितीय खण्ड में भारिल्ल जी के बहुआयामी व्यक्तित्व को रेखांकित करने हेतु उनके परिवारजनों, विद्वानों, समाजसेवियों और उनकी शिष्य मण्डली के उद्‌गार, संस्मरण और श्रद्धासुमन समाहित हैं। तृतीय खण्ड में उनके साहित्य की बानगी दी गई है। चतुर्थ खण्ड के प्रथम भाग में जहाँ भारिल्ल जी की **जिनपूजन रहस्य, सामान्य श्रावकाचार, द्रव्यदृष्टि, णमोकार महामंत्र, ऐसे क्या पाप किये, षट्कारक अनुशीलन** और **स्वतंत्रता की उद्‌घोषक है-पर से कुछ भी संबंध नहीं** कृतियों पर विद्वान मनीषियों के समीक्षात्मतक आलेख हैं वहीं उसके द्वितीय भाग में उनके द्वारा प्रणीत कथा एवं उपन्यासों को लेकर सुधी पाठकों ने अपनी प्रतिक्रिया स्वरूप लेखनी चलाई है। पंचम खण्ड में चित्रों के झरोखे से पण्डितजी के जीवन, स्वजनों और इष्टमित्रों का परिचय प्रस्तुत किया गया है। छठा खण्ड 'विदिशा की विरासत : पण्डित रतनचन्द भारिल्ल' शीर्षक से है क्योंकि पण्डित जी ने सन् १९६२ से सन् १९७९ पर्यन्त १७ वर्ष विदिशा की भूमि को अपनी कर्मस्थली बनाया था। सप्तम खण्ड में प्रथमतः १६ कवि मनीषियों की तदनन्तर उनके शिष्यों की उनके प्रति काव्यांजलि है । और अन्त में आठवा खण्ड पुनः उनके प्रशंसकों की प्रशंसा से परिपूर्ण है। ग्रन्थ का समापन अभिनन्दन समारोह में पण्डित जी के उद्‌बोधन और उनके वंश वृक्ष से हुआ हैं।

धन्य हैं पंडित रतनचन्द भारिल्ल जी जो उन्हें उनके व्यक्तित्व और कृतित्व की सराहना करने वाले इतने सारे निष्ठावान प्रशंसक प्राप्त हो सके। ग्रन्थ वास्तव में रतनों का दीपक बन गया है। इसकी इस भव्य संयोजना और प्रस्तुति के लिये इसके आयोजक, सम्पादक और प्रकाशक साधुवाद के पात्र हैं।

(७) तीर्थंकरस्तव : पद्यानुवादक मुनि अजितसागर; प्र. प्रकाश शोध संस्थान, नई दिल्ली; प्र.सं. २००५; पृ. ६४

आचार्य श्री विद्यासागरजी के सुशिष्य मुनि अजितसागरजी ने मुनि श्री समतासागरजी द्वारा संकलित-सम्पादित **'भक्ति निकुंज'** में प्राप्त संस्कृत में २५ श्लोकों में निबद्ध अज्ञातकर्तृक **लघुस्वयंभू स्तोत्र** से प्रभावित होकर उसका हिन्दी में पद्यानुवाद **'तीर्थंकरस्तव'** नाम से किया है। मूल श्लोकों के साथ अपना पद्यानुवाद, अन्वयार्थ और सरल भाषा में भावार्थ भी प्रस्तुत किया है ताकि मूल स्तोत्र को हृदयंगम करने में पाठकों को सरलता रहे। साथ ही प्रत्येक तीर्थंकर की स्तुति के समक्ष उनका विवरण भी दिगम्बर आम्नाय के अनुसार दिया है जिससे पाठक को उनके विषय में मोटी-मोटी जानकारी एक साथ सुलभ हो जाय। कृति के प्रस्तुत रूप में प्रणयन के लिये मुनिश्री तथा भव्य प्रकाशन हेतु प्रकाशक साधुवाद के पात्र हैं।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि चौबीसों तीर्थंकरों की स्तुति में आचार्य समन्तभद्र (समय लगभग १२०-१८५ ई.) ने सस्कृत में १४४ श्लोकों में **'स्वयम्भू स्तोत्र'** की रचना की थी। बाद में किन्हीं ने संस्कृत में २५ श्लोकों में चौबीसों तीर्थंकरों की स्तुति की और उसका भी नाम **'स्वयम्भू स्तोत्र'** रहा। इन दोनों में विभेद करने की दृष्टि से समन्तभद्रीय स्तोत्र को **'वृहत्स्वयंभूस्तोत्र'** की संज्ञा दी गई और यह इस नाम से पं. अजितवीर्य शास्त्री द्वारा सम्पादित एवं गत शताब्दी के पूर्वार्द्ध में शारदा पुस्तकालय, कलकत्ता से प्रकाशित **'वृहज्जैनवाणी-संग्रह'** में पृष्ठ ७५-९० पर संकलित है। इस संग्रह में मुनि श्री अजितसागरजी द्वारा आलोच्य कृति में प्रस्तुत २५ पद्यीय स्तोत्र भी पृष्ठ ३२१-३२४ पर **'अथ संस्कृत स्वयंभूस्तोत्रम्'** के नाम से दिया हुआ है। इतना ही नहीं भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित **'ज्ञानपीठ- पूजांजलि'** (प्रथम संस्करण १९५७ ई.) में भी यह स्तोत्र **'स्वयम्भू-स्तोत्रम्'** के नाम से हिन्दी अनुवाद सहित दिया हुआ है। **'भक्ति निकुंज'** कब प्रकाशित हुई, इसकी जानकारी हमें नहीं है। किन्तु इतना स्पष्ट है कि इस **लघु स्वयम्भू स्तोत्र** की मान्यता भी काफी प्राचीन है और अपने लालित्य के कारण यह लोकप्रिय रहा भले ही उसके रचयिता के विषय में हम कुछ नहीं जान सके।

(८) **श्रमणरत्न आचार्यश्री सुबलसागर महाराज जी** : मूल कन्नड लेखक डॉ. एस. पी. पाटील और हिन्दी अनुवादक श्री टी. आर. जोडट्टि एवं श्री बाहुबली भोसगे; प्र. मोहनलाल चंद्रवती जैन चैरिटेबिल ट्रस्ट, दिल्ली; २००४; पृ. १०+८४

प्रस्तुत कृति में डॉ. पाटील ने आचार्य सुबलसागरजी की जीवनी निबद्ध की है। जनपद बेलगाम की तहसील अथणी के अन्तर्गत नंदगांव में एक जैन कृषक परिवार में शिवगौड पाटील के ज्येष्ठ पुत्र के रूप में जन्मे परगौडा पाटील ने लगभग ३५ वर्ष की वय तक पारिवारिक दायित्वों का निर्वहन करने के अनन्तर अध्यात्म की ओर उन्मुख होने और वैराग्य भाव उत्पन्न होने से सन् १९५५ ई. में आचार्य पायसागरजी से ब्रह्मचर्य दीक्षा, अगस्त १९५६ में मुनि श्री वीरसागरजी से क्षुल्लक दीक्षा, मार्च १९६० में आ. देशभूषण जी से ऐलक दीक्षा और उन्हीं से सन् १९६१ में मांगूर में मुनि दीक्षा ग्रहण कर सुबलसागर नाम पाया था। २३ दिसम्बर, १९७९ को सुबलसागरजी को आचार्य पद प्रदान किया गया। १७ मार्च, १९९२ को उन्होंने नियम सल्लेखन व्रत लिया। और ८५ वर्ष की अवस्था में २२ जनवरी, २००४ को वह अपना आचार्य पद त्याग क्रमशः षट्रस त्याग करने लगे। १७ मार्च, २००४ को शेडबाल में वह नश्वर देह से मुक्त हुए। अपने जीवन का बहुभाग लगभग ५० वर्ष तप-त्याग,

धर्माराधन और धर्मप्रचार में व्यतीत करने वाले शान्त परिणामी, निर्दोष चारित्र के धनी आचार्य सुबलसागरजी की जीवनी को निबद्ध करने वाले, उसका हिन्दी रूपान्तर करने वाले और उसको प्रकाशित करने वाले सभी साधुवाद के पात्र हैं।

(६) **जैनं रामायण** : रचियित्री श्रीमती त्रिशला जैन; प्र. श्री दि. जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर; फरवरी २००५; पृ. १००+१६

वैष्णव परम्परा में विष्णु का अवतार और भगवान माने जाने वाले तथा जैन परम्परा में त्रिषष्ठिशलाका पुरुषों के अन्तर्गत आठवें बलभद्र के रूप में परिगणित पुरुषोत्तम राम और उनकी सहधर्मिणी सीता भारतीय जनमानस में इतनी लोकप्रिय रही कि उनकी जीवन कथा को लेकर भारत की सभी परम्पराओं और भाषाओं में अपने-अपने ढंग से विपुल साहित्य का सृजन हुआ। यही नहीं, भारत के बाहर भी भारतीय संस्कृति से प्रभावित देशों में रामकथा अपने-अपने रूप में प्रचार-प्रसार को प्राप्त हुई। जहां बाल्मीकिय रामायण एवं अन्य वैष्णव रामायणों में सीताजी को भूमि से प्राप्त राजा जनक द्वारा पोषित पुत्री वर्णित किया गया है, वहीं जैन परम्परा में सीता जी की जन्म कथा के दो रूप देखने को मिलते हैं। आचार्य विमलसूरि द्वारा जैन महाराष्ट्री प्राकृत में ३ ई० में निबद्ध **'पउमचरियं'** रामकथा का उपलब्ध सर्वप्राचीन जैनरूप माना जाता है। उसी के अनुसरण में ६७८ ई. में आचार्य रविषेण ने संस्कृत में **'पद्मपुराण'** की रचना की तथा ८वीं शती ई. में कवि स्वयंभू ने अपभ्रंश में **'पउमचरिउ'** निबद्ध किया। इन तीनों कृतियों में सीता को राजा जनक की रानी विदेहा के गर्भ से उसके भाई भामंडल, जिसका जन्म लेते ही पूर्वभव के वैर के कारण देव द्वारा अपहरण कर लिया गया, के संग उत्पन्न होने का उल्लेख है। साथ ही इनमें राम का नाम 'पद्म' अभिहित किया गया है। जैन रामायण का दूसरा रूप, जिसमें सीता ज़ी को लंकाधिपति रावण की पुत्री बताया गया है, लगभग सातवीं शती ई० में हुए संघदासगणि द्वारा प्राकृत में निबद्ध **'वसुदेवहिण्डी'** में अवान्तरकथा के रूप में वर्णित रामकथा में, शक सं. ८२० (८६८ ई.) में आचार्य गुणभद्र द्वारा रचित **'उत्तरपुराण'** में, ६३२ ई. में हरिषेण द्वारा संस्कृत में निबद्ध **'वृहत्कथाकोश'** में और ६६५ ई. में कवि पुष्पदन्त द्वारा अपभ्रंश में रचित **'महापुराण'** में देखने को मिलता है।

यद्यपि प्रस्तुत 'जैन रामायण' की रचयित्री ने अपने आत्म निवेदन में यह उल्लिखित नहीं किया है कि उनकी कृति में वर्णित कथा का आधार क्या है, वह स्पष्टतः **'पउमचरियं'** के अनुसरण पर निबद्ध **'पद्मपुराण'** पर आधारित है।

राम-सीता कथानक के इस जैन रूप को अपनी कल्पना के रंग भरते हुए २६७ ललित पद्यों में अनुस्यूत कर उजागर करने का श्लाघनीय कार्य सिद्धहस्त कवियित्री त्रिशला जी ने किया है। इसके लिये वह साधुवाद की पात्र हैं।

(१०) **बाबू ज्योति प्रसाद जैन : व्यक्तित्व और कृतित्व** : सम्पादक श्री कुलभूषण कुमार जैन; प्र. प्राच्य श्रमण भारती, मुजफ्फरनगर; २००५; पृ. ११५

देवबन्द (जिला-सहारनपुर) में सन् १८८२ ई. की आश्विन कृष्ण दशमी को एक अत्यन्त साधारण परिवार में लाला नत्थूमल जैन के घर माता गोपा देवी की कोख से जन्मे और उसी नगर में २८ मई, १६३७ ई. को दिवंगत हुए बा. ज्योति प्रसाद जैन अपने समय के एक सुप्रसिद्ध समाजसेवी, स्वातन्त्र्य सेनानी, सुधारक, वक्ता, निर्भीक पत्रकार और गद्य-पद्य रचनाकार रहे। प्रारम्भ से ही स्वावलम्बी रहे बाबूजी में स्वाभिमान कूट-कूट कर भरा था। उन्हें हिन्दी और उर्दू भाषाओं में अनेक कृतियों का प्रणयन करने तथा उर्दू **'जैन प्रचारक', 'जैन नारी हितकारी'** और **'जैन प्रदीप'** पत्र निकालने तथा उनका सम्पादन करने का श्रेय रहा। **'जैन प्रदीप'** के अप्रैल-जून १६३० के अंक में उर्दू में प्रकाशित उनके लेख 'भगवान महावीर और महात्मा गांधी' (**शोधादर्श**-५० में पृष्ठ २३-३० पर उद्धृत) पर तत्कालीन ब्रिटिश सरकार को कड़ी आपत्ति हुई। उन्होंने पत्रिका पर पाबन्दी लगा दी और आगे निकालने हेतु एक हजार रुपये की जमानत मांगी जिसे स्वाभिमानी बाबूजी ने देने से इंकार कर दिया। फलतः वह पत्रिका बन्द हो गई थी। बाबू जी के सम्बन्ध में इतस्ततः बिखरी हुई सामग्री को संजो और सम्पादित कर उनके व्यक्तित्व और कृतित्व को प्रस्तुत कृति के माध्यम से उजागर करने का सत्कार्य उनके भाई के पौत्र कुलभूषण कुमार जी ने किया है। इसके लिये वह साधुवाद के पात्र हैं।

(११) **शब्दाभिषेक** : रचनाकार श्री जयराम दास रस्तोगी 'दास'; प्र. मधुलिका प्रकाशन, १८६/५१, खत्री टोला, मशकगंज, लखनऊ-१८; मार्च २००५; पृ. ६८

प्रस्तुत कृति में १५२ कुण्डलिया छन्द हैं। इनमें प्रारम्भ में १६ कुण्डलियां मंगलाचरण स्वरूप 'विनय' शीर्षक से हैं। तदनन्तर २७ देश-भक्ति पर, २५ प्रकीर्ण, २४ हास्य-व्यंग्य की, ३१ सामयिक/नैतिक विषयों पर, १३ पर्यावरण पर, १२ कवि की जन्मभूमि काशी पर और अन्त में एक कुण्डलिया हिन्दी-भाषा पर अनुस्यूत हैं। इस प्रकार इन कुण्डलियों के माध्यम से कवि ने अपनी कल्पना और काव्य-अभिव्यक्ति से विविध विषयों को स्पर्श किया है। समाज में दीख पड़ रही है अनेक विसंगतियों पर कवि ने अपने हास्य-व्यंग्य से सशक्त मार की है। भाषा सरल-सहज है।

कुण्डलिया छन्द रचने में कवि जयराम दास जी निष्णात हैं। कृषि उत्पादन मण्डी समिति में लेखाकार के पदपर सेवारत ५४ वर्षीय श्री जयराम दास रस्तोगी को बाल्यावस्था से ही उर्दू-फारसी मिश्रित शेरो-शायरी से लगाव हुआ, शाहबाद (हरदोई) में मुशायरों में शिरकत की और हिन्दी साहित्य के छात्र रहे होने तथा हिन्दी मातृभाषा होने के कारण उन्होंने हिन्दी को भी अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाना उचित समझा। इस संकलन की कुण्डलियों में प्रवाहित शब्द-धारा से कवि ने वस्तुतः माँ सरस्वती का अभिषेक किया है, अस्तु इसका नामकरण 'शब्दाभिषेक' किया जाना उचित ही है। निस्सन्देह काव्यरसिकों को यह काव्य कृति आनन्दित करेगी।

(१२) **मानस्तंभ** : सम्पादक-संयोजक : श्री भानुकुमार जैन; प्र. पद्मश्री बाबूलाल पाटोदी, महामंत्री, भगवान बाहुबली दिगम्बर जैन ट्रस्ट गोम्मटगिरि, ८४, गुमास्ता नगर, इन्दौर; जनवरी २००५; पृ. १२० (सचित्र)

गोम्मटगिरि, इन्दौर, में चौबीसी परिसर में नवनिर्मित भव्य मानस्तंभ में विराजित श्री आदिनाथ जिनबिंब के २५ से ३० जनवरी, २००५ को सम्पन्न पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव पर प्रस्तुत स्मारिका, जिसे 'प्रासंगिका' नाम दिया गया है, प्रकाशित हुई है। इस सचित्र स्मारिका में शुभाशीष और शुभकामनाओं के साथ-साथ अतिशय तीर्थ श्री गोम्मटगिरि, सिद्धक्षेत्र चूलगिरि- बावनगजा तथा देश भर में विभिन्न स्थानों पर स्थापित जैन मानस्तम्भों का परिचय दिया गया है। जैन पुरातत्व के अध्येताओं के लिये यह स्मारिका उपयोगी है।

(१३) **स्थूलिभद्र संदेश शतकांक** : सम्पादक श्री ललित कुमार नाहटा; प्र. श्री हरखचन्द नाहटा स्मृति न्यास, ११३२-छत्ता मदनगोपाल, दिल्ली-६; अप्रैल २००५; पृ.१००

दिल्ली से जनवरी १९९७ से प्रकाशित मासिक 'स्थूलिभद्र संदेश' का यह शतकांक आशीर्वचन और शुभकामना संदेशों के साथ-साथ पत्रिका के विगत १०० अंकों में से चुनिंदा सामग्री तथा अनेक विद्वान् मनीषियों की गद्य-पद्यमय पठनीय-मननीय रचनाएं संजोये ज्ञान का अनुपम भण्डार हो गया है। इसके संयोजन और सुसम्पादन के लिये बन्धुवर ललित नाहटा जी साधुवाद के पात्र हैं।

(१४) **श्रीवर्धमान** : लेखक श्री कलाकुमार; प्र. आल इण्डिया प्राइमरी एजूकेशन वेलफेयर सोसायटी, 'मीरा निकुंज', एफ-१४५० राजाजीपुरम, लखनऊ-१७; २००५ ई., पृ. १०४

जैन धर्मानुयायी न होते हुए भी प्रबुद्ध चिन्तक- लेखक श्री कलाकुमार जी ने जैन धर्म के प्रति रुचि होने के कारण उपाध्याय श्री अमर मुनि जी से वर्धमान महावीर, जैन धर्म और जैन संस्कृति के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त किया तथा श्वेताम्बर सूत्र साहित्य एवं दिगम्बर पुराण साहित्य का अध्ययन-मनन किया। प्रस्तुत कृति में उन्होंने दिगम्बर-श्वेताम्बर दोनों परम्पराओं की मान्यता को ध्यान में रखते हुए निष्पक्ष भाव से २४वें तीर्थंकर वर्धमान महावीर के जीवनवृत को निबद्ध किया है। साथ ही जैन दर्शन के सभी मूलभूत सिद्धान्तों का भी सरल-बोधगम्य भाषा-शैली में वर्णन किया है। डॉ. राम मुनि 'निर्भय' जी ने इस पुस्तक को ठीक ही 'गागर में सागर' बताया है। इस श्रमसाध्य कृति के प्रणयन हेतु इसके लेखक साधुवाद के पात्र हैं।

– रमा कान्त जैन

अभिनन्दन

श्री अरविन्द कुमार जैन, अध्यापक, श्री गणेशीराम झंवरलाल राजकीय माध्यमिक विद्यालय, सुजानगढ़, को उनके शोध-प्रबन्ध **'समयसार का दार्शनिक परिशीलन'** पर जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूं, ने पी-एच.डी. उपाधि प्रदान की।

श्री महेन्द्र कुमार जैन 'साह बजाज', व्याख्याता, राजकीय महाविद्यालय, अजमेर, को उनके शोध-प्रबन्ध **'जैन दर्शन में आर्थिक चिन्तन'** पर महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर, ने पी-एच.डी. उपाधि प्रदान की।

श्री पंकज जैन, सहायक प्राध्यापक, शासकीय स्नातक महाविद्यालय, नवलगढ़, को उनके शोध-प्रबन्ध **'बानमौर औद्योगिक क्षेत्र की आर्थिक विफलता एवं सफलता का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन'** पर जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर, ने पी-एच.डी. उपाधि प्रदान की।

श्री मोहन धारिया (जैन), पूर्व केन्द्रीय मंत्री को इस वर्ष **पद्मभूषण** से अलंकृत किया गया।

श्री देविन्दर कुमार जैन, न्यायाधीश दिल्ली उच्च न्यायालय को पंजाब और हरयाणा उच्च न्यायालय का **मुख्य न्यायाधीश** नियुक्त किया गया।

श्री किशनचंद जैन, एडवोकेट, भारतीय जैन मिलन की आगरा शाखा के **अध्यक्ष** निर्वाचित हुए।

१४ मार्च, २००५ को चंडीगढ़ में सामाजिक कार्यकर्ता **श्री महेन्द्र कुमार 'मस्त'** को अखिल भारतीय श्री आत्मवल्लभ जैन महासंघ चैन्नई तथा श्री आत्मानन्द जैन महासभा उत्तर भारत की ओर से -**'समाजरत्न'** के विरुद से विभूषित किया गया।

२२ अप्रैल को श्रवणबेलगोला में 'जैन महिलादर्श' की सम्पादिका **डॉ. नीलम जैन** को उनके साहित्यिक अवदान हेतु **'गोमटेश्वर विद्यापीठ पुरस्कार'** प्रदान किया गया।

२४ अप्रैल को श्री महावीर जी में **'श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन, जबलपुर,** को उनकी कृति 'Exact Sciences in the Karma Antiquity' हेतु वर्ष **२००४ का महावीर पुरस्कार** प्रदान किया गया तथा **डॉ. श्रीमती मुन्नी जैन, वाराणसी,** को उनकी कृति **'हिन्दी गद्य के विकास में पं. सदासुखदास का योगदान'** पर जैन विद्या संस्थान, जयपुर द्वारा वर्ष **२००४ के ब्र. पूरणचन्द रिद्धिलता लुहाड़िया पुरस्कार** से सम्मानित किया गया।

सौ. डॉ. शरयु शहा (मुम्बई) को वृत्त लेखन, काव्य रचना, निबन्ध लेखन व विविध क्षेत्रों में सराहनीय योगदान हेतु २४ अप्रैल, २००५ ई. को ओंकार प्रतिष्ठान, मुम्बई, द्वारा **'कवि भूषण पुरस्कार २००५'** से सम्मानित किया गया।

२७ अप्रेल को उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान ने ८७ वर्षीय वरिष्ठ पत्रकार **श्री ज्ञानचन्द जैन, लखनऊ** को **पत्रकारिता भूषण सम्मान** तथा वयोवृद्ध **कवि श्री गयाप्रसाद तिवारी 'मानस', लखनऊ** को उनकी कृति 'ब्रज विनोद' पर **श्रीधर पाठक पुरस्कार** दिये जाने की घोषणा की।

डॉ. महेन्द्र भण्डारी, कुलपति, किंग जार्ज चिकित्सा विश्वविद्यालय, लखनऊ को गुर्दा प्रत्यारोपण के क्षेत्र में विशेष योगदान हेतु **'विज्ञान गौरव'** सम्मान प्रदान किया गया।

दिल्ली संस्कृत अकादमी पुरस्कार वितरण समारोह में **डॉ. विजय कुमार जैन, लखनऊ,** तथा **'सूक्तिकोश'** की लेखिका **डॉ. राका जैन, लखनऊ,** का सम्मान हुआ।

श्री सुरेश जैन सरल, जबलपुर की पुस्तक **'अष्टापद कैलाश'** का नई दिल्ली में विमोचन हुआ।

२६ मई को ऋषभांचल गाजियाबाद में मासिक **'जैन प्रचारक'** (नई दिल्ली) के सम्पादक **डॉ. सुरेशचन्द जैन को 'ऋषभदेव पुरस्कार'** से सम्मानित किया गया।

संघ लोकसेवा आयोग द्वारा आयोजित आई.ए.एस. परीक्षा में जबलपुर के **श्री राहुल जैन** तथा थाना गाजी, जिला अलवर, के **श्री सुकेश जैन** चयनित हुए।

जोधपुर विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति, कोलकाता विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष एवं प्रख्यात चिन्तक **प्रो. कल्याणमल लोढ़ा** को उनकी पुस्तक **'वाग्विभव'** के लिये भारतीय ज्ञानपीठ का वर्ष २००३ का १७वां **मूर्तिदेवी पुरस्कार** देने का निर्णय किया गया।

वरिष्ठ पत्रकार एवं जैन संस्कृति रक्षा मंच के अध्यक्ष **श्री मिलापचंद डंडिया, जयपुर,** को राजस्थान के गृह मंत्री की अध्यक्षता में गठित 'राज्य स्तरीय पुलिस समुदाय सहभागिता सलाहकार समिति' का सदस्य मनोनीत किया गया।

जून माह में प्रधान सम्पादक श्री अजित प्रसाद जैन जी के भारतीय सेना में सेवारत सुपौत्र कैप्टन **मनीष जैन मेजर** के पद पर पदोन्नत कर दिये गये।

उपर्युक्त सभी सम्मानित महानुभावों का उनकी उपलब्धियों के लिये **शोधादर्श** परिवार हार्दिक अभिनन्दन करता है और उन्हें अपनी शुभकामना अर्पित करता है।

शोक संवेदन

२६ मार्च, २००५ को सुदामानगर (इन्दौर) में ६४ वर्षीय मनीषी विद्वान् **पं. नाथूराम डोंगरीय 'अवनीन्द्र'** का निधन हो गया। डोंगरीय जी को जैन धर्म के अनेक सिद्धान्त ग्रन्थों की टीका एवं पद्यानुवाद करने का श्रेय है। उनकी **'जैनधर्म का सरल परिचय'** और **'जैन धर्म विश्व धर्म'** कृतियां काफी लोकप्रिय रहीं।

१ अप्रैल, को नई दिल्ली में सुप्रसिद्ध चिन्तक साहित्यकार, ८७ वर्षीय **आचार्य श्री नगराज जी,** नहीं रहे। सन् १६३४ ई. में तेरापंथ के अष्टम आचार्य श्री कालूगणि से दीक्षा ग्रहण किये श्री नगराज जी सन् १६६२ ई. में अणुव्रत परामर्शक बनाये गये थे। सन् १६६६ ई. में कानपुर विश्वविद्यालय ने उन्हें **'आगम और त्रिपिटक ग्रन्थ'** पर ऑनरेरी डी.लिट्-उपाधि प्रदान की थी। सन् १६८१ ई. में वह **'राष्ट्रसंत'** विरुद से विभूषित किये गये और सन् १६६१ ई. में भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा पुरस्कृत। वह समाज के विभिन्न वर्गों से सम्पर्क रखने और उन्हें प्रभावित करने वाले मनीषी रहे। उनके निधन से समाज की अपूरणीय क्षति हुई है।

१७ अप्रैल को उत्तर प्रदेश के पूर्व राज्यपाल, सुप्रसिद्ध साहित्यकार और भारतीय जनता पार्टी के वरिष्ठ नेता ७६ वर्षीय **श्री विष्णुकान्त शास्त्री** का पटना के निकट रेलयात्रा में स्वर्गवास हो गया।

१६ अप्रैल को दिल्ली में **'दिव्य ध्वनि'** मासिक के प्रबन्ध सम्पादक, समाजसेवी, उद्योगपति ५१ वर्षीय **श्री प्रवीण भाई मोतीलाल जी शहा** का दुर्घटना में असामयिक देहावसान हो गया।

३ जुलाई को ग्वालियर में ८२ वर्षीय अनेक पुस्तकों के प्रणेता लब्धप्रतिष्ठ विद्वान श्री रामजीत जैन, एडवोकेट, का निधन हो गया।

१४ जुलाई को कटनी में ८३ वर्षीय विद्वान **पं. कन्हैयालाल शास्त्री, काव्यतीर्थ** नहीं रहे।

शोधादर्श परिवार उपर्युक्त दिवंगत महानुभावों को अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता है, उनकी आत्मा की चिर शान्ति और सद्गति के लिये जिनेन्द्र देव से प्रार्थना करता है तथा शोक सन्तप्त उनके स्वजनों - परिजनों के प्रति हार्दिक संवेदना व्यक्त करता है।

आभार

श्री कैलाशचन्द्र जैन, ३७/७ बी, खेलात बाबू लेन, कोलकाता ने श्रीमती स्वरूपी देवी वात्सल्य निधि की ओर से **शोधादर्श** को भेंट स्वरूप रु. ३०००/- प्रदान किये। साथ ही श्री जैन अपनी ओर से १३ संस्थाओं/व्यक्तियों का **शोधादर्श** का वार्षिक ग्राहक शुल्क भी दे रहे हैं।

डॉ. एस. के. जैन, सुपुत्र श्री चन्द्रकुमार जैन वैद्य, १०६/११, नया गांव, माडल हाउस, लखनऊ ने समिति के **शोध पुस्तकालय** हेतु रु. २,०००/- दान सहायता स्वरूप प्रदान किये।

श्रीमती माया जैन, (कनिष्ठ पुत्रवधु श्री अजित प्रसाद जैन, पारस सदन, आर्यनगर, लखनऊ) ने श्रद्धेय अजित प्रसाद जैन जी की पुण्य स्मृति में **तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र.,** को दानस्वरूप रु. १५०१/- भेंट किये।

समिति के अध्यक्ष **श्री लूणकरण नाहर जैन,** नाहर भवन, ५१४, राजेन्द्र नगर, लखनऊ ने अपनी ओर से २[illegible] सज्जनों/संस्थाओं को वर्ष २००५ में **शोधादर्श** भेजे जाने हेतु रु. १,२५०/- भेंट किये।

श्री जमनालाल जैन, अभय कुटीर, सारनाथ (वाराणसी) ने **शोधादर्श** को सहायता स्वरूप रु. १००/- भेंट किये।

डॉ. शशि कान्त-रमा कान्त जैन, ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ ने अपने पूज्य पिताजी स्व. डॉ. ज्योति प्रसाद जैन की १७वीं पुण्यतिथि पर उनकी स्मृति में **शोधादर्श** को रु. ५१/- भेंट किये।

श्री ताराचंद जैन अग्रवाल, पचेवर (टोंक) ने अपने पूज्य पिताजी श्री पांचूलाल जैन अग्रवाल की पुण्य स्मृति में **शोधादर्श** को रु. ५०/- भेंट किये।

शोधादर्श परिवार उपर्युक्त सभी दातारों का हृदय से आभारी है।

पाठकों के पत्र

शोधादर्श ५५ में 'गुरुगुण-कीर्तन' के माध्यम से श्री अगरचन्द नाहटा के विषय में जो कुछ जाना वह उनके 'अभिनन्दन ग्रन्थ' को साथ में रखने पर भी न जान सका था। 'समाधिमरण' पर सम्पादकीय अत्यन्त गंभीर और विचारोत्तेजक है। 'बड़नगर का पुरातत्त्व' वहाँ पुरातात्त्विक उत्खनन की आवश्यकता को रेखांकित करता है। **शोधादर्श** का यह अंक भी अपनी शोध-परम्परा की कसौटी पर खरा है। निःसन्देह इसके माध्यम से सम्पादन की उदात्त परिपाटी प्रकट होती है। डॉ. शशि कान्त ने कौशाम्बी के पहली शती ई. के एक आयागपट्ट के मिलने की बात लिखी है। लेख पसन्द आया। डॉ. विमला जैन 'विमल' ने लिखा है कि इस प्रकार की (नाग) रूपाकृतियाँ ५०० ई० पू० की कला में आरंभ हो गई थीं (पृ. ३०)। मेरी जिज्ञासा जानने की है कि किस स्थान की कला में तथा सन्दर्भ क्या है?

– डॉ. ए. एल. श्रीवास्तव, भिलाई

शोधादर्श -५५ देखकर हर्ष हुआ है कि पत्रिका का स्तर दिन पर दिन ऊंचा हो रहा है। लेखों की विविधता और गुणात्मकता के लिए सम्पादक मण्डल प्रशंसा का पात्र है। वयोवृद्ध अजित प्रसाद जैन का सम्पादकीय 'समाधिमरण' वास्तव में मनन के योग्य है। कविवर भाई रमा कान्त जैन की क्षणिकायें अपनी अनूठी शैली और विषय वस्तु की दृष्टि से बेजोड़ हैं। डॉ. शशि कान्त जैन का ऐतिहासिक लेख 'जैन संस्कृति में कौशाम्बी' उनके गंभीर अध्ययन का परिचायक है।

अन्य लेख भी पत्रिका के स्तर के अनुरूप हैं और उनकी अपनी विशिष्टतायें हैं।

– श्री कैलाश नारायण टण्डन, कानपुर

शोधादर्श -५५ सामने है। सम्पादकीय नयी चेतना लिये है, आपका जैन संस्कृति के प्रति योगदान श्लाघनीय है। इस अंक में प्रकाशित सभी लेख पठनीय हैं। पृष्ठ ५२ पर 'दिगम्बरत्व की मर्यादा' शीर्षक से महात्मा गांधी के १६३१ में व्यक्त विचार छपे हैं। गांधी जी के विचार आज के परिप्रेक्ष्य में निश्चित ही विचारणीय और चिंतनीय हैं। हमारे आचार्यों को चाहिए कि वह वक्त का तकाजा रखते हुए दिगम्बरी दीक्षाएं सीमित दें। थोक के भाव दीक्षा देने से कुछ नहीं होने वाला। गांधी जी के विचार एक दृष्टि से सही प्रतीत होते हैं।

– श्री सुनील कुमार जैन 'संचय', नरवाँ

शोधादर्श-५५ में ''समाधिमरण'' शीर्षक से सम्पादकीय पढ़कर कष्ट हुआ। समाधिमरण पर प्रश्नचिह्न लगाकर आपने इसे अपने जीवन का अन्तिम लक्ष्य बनाने

वालों को हतोत्साहित किया है।* **शोधादर्श** मेरी प्रिय पत्रिका है- इसके कुछ विचारों से सहमत भले न हूँ किन्तु समीक्षात्मक विचार भी सबके समक्ष आने चाहिए- इस दृष्टि से विचार अच्छे लगते रहे हैं।

- डॉ. फूलचन्द जैन प्रेमी, वाराणसी

'शोधादर्श' मेरी प्रिय पत्रिकाओं में से एक है। शोधादर्श ५५ में डॉ. सागरमल जी का लेख 'भगवान महावीर का जन्मस्थल : एक पुनर्विचार' श्री अगरचन्द जी नाहटा का व्यक्तित्त्व एवं कर्तृत्त्व संबंधी लेख, कला संबंधी आलेख सभी बहुत पठनीय एवं मननीय हैं। कवितायें, क्षणिकायें भी प्रेरणास्पद हैं। पर इस बार 'समाधिमरण' पर सम्पादकीय पढ़कर मन खेद खिन्न हो गया।*

- डॉ. मुन्नी पुष्पा जैन, वाराणसी

***[डॉ. फूलचन्द 'प्रेमी' और डॉ. मुन्नी पुष्पा जी के पत्रों में सम्पादकीय 'समाधिमरण' पर व्यक्त प्रतिक्रिया के सम्बन्ध में प्रधान सम्पादक जी के निर्देशानुसार उत्तर भेजा जा चुका है। आशा है, उनका समाधान हो गया होगा - सम्पादक]**

'शोधादर्श' अंक पचपनवां पाकर हुआ कृतज्ञ।
भरे हुये साहित्य सुधारस, लिखते जिसे गुणज्ञ,,
लेख सारगर्भित हैं संचित, कविताओं में ज्ञान,,
साधुवाद सम्पादक जी को, दिया अंक गुण-खान,,

- श्री दयानन्द जड़िया 'अबोध', लखनऊ

शोधादर्श -५५ अभी ६.४.२००५ को मिला। सभी आलेख एक बैठक में ही पढ़ डाले। 'बड़नगर और पुरातत्व' तथा 'इतिहास मनीषी डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन' शोध और बोध प्रदान करते हैं। 'जैन संस्कृति में कौशाम्बी' अच्छा शोधपूर्ण लेख है तथा सम्पूर्ण जानकारी देता है। इसका सर्वे जैन पुरातत्त्व की दृष्टि से जरूरी है। जो कुछ सर्वे हुआ है अंग्रेजों के काल के बाद थमकर रह गया।

शोधादर्श विसंगतियों पर करारी चोट करता है। संवेदनहीन समाज के कान पर जूं तक नहीं रेंगती। अब बाहुवली के मस्तकाभिषेक में भी बाहुबल प्रयोग किया जाने लगा है। मर्यादाविहीन समाज का यह एक ताजा नमूना है। नेतृत्व मौन, विद्वान पंडित मौन, पत्रकारिता भी मुँह सिए बैठी है।

आपकी पत्रिका अन्य पत्रिकाओं से हटकर अपना कर्त्तव्य निभा रही है। कभी-कभी सामाजिक घावों नासूरों पर नमक मिर्ची भी छिड़कती जाती है। आपकी बेबाकी को मेरा नमन्। संपादकीय समयोचित है।

- डॉ. कांति जैन, ग्वालियर

संपादकीय का एक-एक शब्द विचारणीय है तथा सच्चाई को उजागर करता है। थोपी गई समाधि और स्वाभाविक समाधि दोनों में बहुत बड़ा अन्तर है। डॉ. सागरमल जैन के आलेख में सिंधु वैशालिया का उल्लेख नहीं किया गया जो बहुत जरूरी था। उन्होंने श्वेताम्बर सूत्रों को उद्धृत किया है। 'जैन कला में नाग आकृतियां' के स्थान पर इस आलेख का शीर्षक 'जैन मूर्तियों में नाग आकृतियाँ' ज्यादा उचित है। पं. सुनील संचय का आलेख समसामयिक और अच्छा है।

रमा कान्त जी का बाबू जी के ऊपर आलेख संक्षिप्त है परन्तु पूरी जानकारियाँ देता है।

'बड़नगर और उसका पुरातत्व' स्व. बाबू जी का आलेख मनोयोग से पढ़ा-। कनिंघम को सन् १८५१ में बड़नगर के गड़रिये के मन्दिर में त्रिशला और शिशु महावीर की मूर्ति मिली थी। २० वर्ष बाद कनिंघम को टूटी हुई मिली। उसके भग्नावशेष मैंने अपनी आँखों से देखे हैं। उरवाही गेट ग्वालियर में भी भ. महावीर त्रिशला माता की गोद में लेटे हुए हैं, आदमकद मूर्ति है।

बड़नगर की Listing और सर्वे का काम पिछले माह ही INTACH ने पूरा किया है। आपने महत्वपूर्ण सूचनाऐं देकर पाठकों का ज्ञान बढ़ाया है। अगरचन्द नाहटा जी पर रमा कान्त जी का आलेख बहुत अच्छा है। उनके अनेकों पत्र मेरे संग्रह में हैं।

- डॉ. अभय प्रकाश जैन, ग्वालियर

'गुरुगुण-कीर्तन' में श्री अगरचन्द नाहटा संबंधी जानकारी ज्ञानवर्द्धक है। सम्पादकीय में समाधिमरण पाठ संबंधी नवीन जानकारी से प्रथम बार परिचित हुआ। ध्यान देने योग्य बात है।

'भगवान महावीर का जन्मस्थल : एक पुनर्विचार' निश्चय ही अच्छा विवेचनात्मक लेख है। 'जैन धर्म की प्राचीनता के वैदिक प्रमाण' लेख संक्षिप्त होते हुए भी सारगर्भित है। 'प्राकृत काव्यों में मुक्तक का स्थान' अच्छा शोधपूर्ण लेख है।

'समाचार विमर्श' एवं 'साहित्य सत्कार' सदैव की भांति उचित जानकारी देते हैं।

- श्री मदनमोहन वर्मा, ग्वालियर

शोध-जगत के लिये अतिशय उपादेय **'शोधादर्श'** का ५५वां अंक प्राप्त हुआ। मुद्रण और प्रस्तवन दोनों दृष्टियों से इस पत्रिका की उत्तरोत्तर उत्कृष्टता ही इसकी विशिष्ट पहचान है।

इस अंक में प्रकाशित श्री रमा कान्त जैन द्वारा उपन्यस्त शोधपुरुष पुण्यश्लोक अगरचन्द नाहटा का इतिवृत्त मेरे लिये पर्याप्त हृदयावर्जक है, क्योंकि वह मेरे जैन शास्त्र के अनुशीलन -कार्य में सतत प्रेरणा पुरुष बने रहे। उनसे मेरा सघन पत्राचार

बना रहा। इसी अंक में डॉ. सागरमल जैन द्वारा प्रस्तुत 'भगवान महावीर का जन्मस्थल : एक पुनर्विचार' शीर्षक से शोधपूर्ण आलेख का ऐतिहासिक मूल्य है। मैं उनके इस निष्कर्ष -'महावीर का जन्मस्थल वैशाली के समीप वर्तमान वासुकुण्ड ही अधिक प्रामाणिक लगता है, से समस्वर हूँ। यथा प्रकाशित अन्य शोधपूर्ण आलेख- 'जैन संस्कृति में कौशाम्बी'; 'जैनकला में नाग-आकृतियाँ'; 'प्राकृत काव्यों में मुक्तक का स्थान'; 'इतिहास-मनीषी डॉ. ज्योति प्रसाद जैन' आदि जैन शास्त्र के शोध-क्षेत्र में समृद्धिकर भूमिका के उपस्थापक हैं।

- डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव, पटना

अभी मैं मार्च २००५ के **शोधादर्श** में 'साहित्य-सत्कार' के अन्तर्गत् 'बीसवीं शताब्दी की जैन विभूतियाँ' पुस्तक पर श्री रमा कान्त जी की टिप्पणी पढ़ रहा था। आजकल अनेक लेखकों में यह बीमारी प्रवेश कर गई है कि वे दूसरों के कार्य को स्तैमाल करते हैं, लेकिन उसका समुचित संदर्भ नहीं देते हैं। कई बार मूल लेख की थोड़ी बहुत भाषा परिवर्तन करके लिख दिया जाता है। समाज की समस्याओं तथा विभिन्न मुद्दों पर आपके विचार निरन्तर पढ़ते रहते हैं। **शोधादर्श** में अनेक बार विभिन्न मुद्दे उठाये गये हैं। समाज की आँखें कब खुलेंगी, पता नहीं।

- डॉ. अनिल कुमार जैन, अहमदाबाद

समाज में एक आवाज अवश्य ही उठाएं कि नई मूर्तियाँ १५ इंच से छोटी प्रतिष्ठित न की जाऐं। छोटी मूर्ति का दर्शन करने का कोई औचित्य ही नजर नहीं आता है और न उनके दर्शन करके मन को सन्तुष्टि मिल पाती है। प्रति वर्ष २५-३० पंचकल्याणक हो रहे हैं, लगभग १००० मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हो रही हैं, सिर्फ २०० बड़ी और सब छोटी ही होती हैं। इस प्रकरण में कानजी स्वामी की सराहना करनी पड़ती है कि उन्होंने गुजरात सौराष्ट्र में जहाँ भी नवीन मन्दिर बनवाए उनकी सुन्दरता सफाई देखकर मन में आनन्द छा जाता है। एक वेदी और १ बड़ी मूर्ति होती है। साहित्य भी सुन्दर कम कीमत पर खूब मिलता है।

- श्री शान्तिलाल जैन बैनाड़ा, हरीपर्वत, आगरा

अंक ५४-५५ मेरे समक्ष हैं। भाई सुरेश सरल जी के लेख पर दृष्टिपात करता हूँ तो बड़ी प्रसन्नता होती है। उन्होंने अजित प्रसाद जी पर शीर्षक सहित समग्र लेख किस तन्मयता से लिखा है, प्रशंस्य है। आश्चर्य चकित हूँ। अंक ५५ के सम्पादकीय को जिस दृढ़ता व खुले मन से लिखा गया है वह उनके लेखन की अत्यंतिक स्पष्ट छवि है। लेख की बारीकी दृष्टव्य है। उनके द्वारा स्वतः स्फूर्त चित्रण वर्णन सचमुच लेखनी के कमाल को इंगित करता है।

- सिंघई मोतीलाल 'विजय', कटनी

शोधादर्श का अंक ५५ सामने है। भाई रमा कान्त जी का 'गुरुगुण-कीर्तन' में श्री अगरचंद नाहटा पर आलेख प्रभावोत्कारी है। डॉ० सागरमल जी जैन का आलेख 'भ. महावीर का जन्म स्थल : एक पुनर्विचार' यथार्थपरक, समीचीन एवं तथ्यात्मक निष्पत्ति है। अनाग्रही महानुभाव निश्चित ही उनकी भावना का आदर करेंगे। शास्त्रीय समीक्षा के अलावा वासोकुण्ड-वैशाली के जनमानस, लोकगीत एवं परम्पराओं में भ० महावीर और उनके उपदेशों की परम्परा कायम है। श्रीमती मीनाक्षी जैन का आलेख अच्छा लगा। 'ऐसे भी होते हैं हंसान, हृदय को छू गया।

शोधादर्श अपने विशिष्ट अंदाज में धर्म/समाज की विकृतियों का प्रकाशन सद्भावना पूर्वक सुधार के दृष्टिकोण से निरंतर करता आ रहा है। दुखद यह है कि विचारणा शक्ति को कछुवे की ढाल ने आवृत कर दिया है जिससे अपेक्षित लाभ नहीं मिलता; किन्तु सत्य का प्रकाशन तो होता ही रहता है। यह भी एक सफलता है।

- डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल, अमलाई

I have gone through Shodhadarsh 54 and 55. They are as usual interesting and thought provoking.

- Sri A. L. Sancheti, Jodhpur

शोधादर्श-५५ में आदरणीय भाई साहब डॉ. ज्योति प्रसाद जी का 'बड़नगर' वाला लेख पढ़ा। यह बड़नगर नहीं 'बडोह' नाम से प्रसिद्ध है और 'पथारी' नहीं अपितु 'पठारी' नाम से वहाँ प्रसिद्ध है। यहाँ बरेठ रेलवे स्टेशन से जाना सहज है। मैंने ये स्थान स्वयं देखे हैं। बरेठ स्टेशन बीना-भोपाल के बीच बीना से चौथा स्टेशन है। गडरमल का विशाल मंदिर अब भी है। पठारी में जैन मन्दिर में भ. शान्तिनाथ की प्रतिमा कायोत्सर्ग मुद्रा में लाल पत्थर की शाहजहाँ के समय की विद्यमान है। वहाँ जंगल में एक विशाल जैन मूर्ति पद्मासन मुद्रा में अस्त व्यस्त दशा में पड़ी मैने देखी थी। अब पता नहीं वह वहाँ है या नहीं। पठारी के पत्थरों का बना हुआ भव्य-कलापूर्ण गडरमल मन्दिर हिन्दुओं के कब्जे में है। भैंसासाह (पाड़ासाह) का कार्यक्षेत्र अहारक्षेत्र, थूबौनजी, चंदेरी, पपौरा आदि स्थान विशेष रूप से रहे हैं। वह यायावर व्यापारी थे, पठारी भी पहुँच गये। वह अग्रवाल नहीं अपितु 'गहोई' थे जिसका मूल शब्द 'गृहपत्यान्वय' लिखित प्राप्त है। बड़नगर तो उज्जैन के पास है।

इसी अंक में श्री अजित प्रसाद जी का 'समाधिमरण' शीर्षक से सम्पादकीय जिजीविषा पैदा करता है।

-डॉ. कुन्दन लाल जैन, शहादरा

(जैसा कि डाक्टर साहब के लेख में शोधादर्श-५५ में पृ० ७ पर स्पष्टतः उल्लिखित है, उनके द्वारा दिया गया विवरण जनरल कनिंघम की आर्केलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया रिपोर्ट, भाग १० (सन् १८८०) के पृ. ७१-७६ पर आधारित है। - रमा कान्त)

'शोधादर्श' अतीव उपयोगी, ज्ञानवर्धक और संग्रहणीय है।

- श्री शीतल प्रसाद जैन, मुजफ्फरनगर

'शोधादर्श' पत्रिका का प्रकाशन, सामग्री संकलन अति दुष्कर कार्य है।

- श्री जिनेन्द्र कुमार जैन,
सम्पादक, साप्ता. 'जिनेन्दु', अहमदाबाद

I am receiving Shodhadarsh regularly. It contains wide information on Jain matters and very good articles, mainly analytical and critical giving material for the scholars.

- Sri Satish Kumar Jain, New Delhi

शोधादर्श-५५ में सम्पादकीय के माध्यम से आ. अजित प्रसाद जी ने समाधिमरण की चर्चा करते हुए हर वृद्ध श्रावक के मन की बात कह दी। इस पर हर पाठक का ध्यान जायेगा और सत्य के कीचड़ में से, सत्य को निकालकर, अपने परिवार के समक्ष रखेगा। "आगम और संत क्या कहते हैं।"- इस पर भीरुता बतलाए वगैर, कुछ कहना, कलम की बहादुरी है। कुछ लोग उनसे सम्मत नहीं होंगे; इसकी भी परवाह नहीं की है उन्होंने।

पृष्ठ ५१ के बाद कुछ महत्वपूर्ण चुटके पढ़ने को मिले जिनमें महात्मा गांधी, डॉ. त्रिलोकचंद कोठारी, साहू शैलेन्द्र कुमार, श्री अजित प्रसाद, श्री कैलाशचंद एवं श्री रमा कान्त का दिल खुलकर बोला है। डॉ. विमला जैन, मीनाक्षी जैन और सुधा जिन्दल के शब्दचित्र सराहनीय हैं।

रमा कान्त जी ने नाहटा जी का परिचय लेखन श्रेष्ठ कलात्मकता से किया है, तो स्व. ज्योति प्रसाद के विषय में भारी सादगी से लिखा है। बधाई! अन्य गणमान्य लेखकों में डॉ. शशि कान्त, डॉ. सागरमल, डॉ. हुकमचंद, पं. सुनील संचय के आलेख श्रेष्ठ हैं। शेष सामग्री भी रुचिकर है। उत्तम संकलन और सम्पादन के लिये बधाई!

- श्री सुरेश जैन सरल, जबलपुर

'शोधादर्श' वास्तव में 'शोध' हेतु एक नमूना है। शोध-कार्य' का एक आईना-शीशा है। यथा नाम तथा गुण प्रायः सभी जैन धर्म-संघों के शोध-विषयक समाचार एवं सूचनाएं विशेष रूप से प्रकाशित किए जाते हैं। वास्तव में शोध-कार्य का विवेचन 'गागर में सागर' वाली उक्ति को चरितार्थ करता है। **- डॉ. रतनलाल जैन, हाँसी**

शोधादर्श -५५ की प्रति प्राप्त हुई। 'समाधिमरण' शीर्षक से सम्पादकीय लेख विचारात्मक तथा अनुभूतिपरक लगा। मैं सम्पादक महोदय के विचारों से पूर्णतया सहमत हूँ। श्रीमती सुधा जिन्दल का लेख 'कैलाशभूषण जिन्दल' एक बहू की श्वसुर के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि है। 'संयुक्त परिवार सुरक्षा भाव देता है' तथा 'दिगम्बरत्व की मर्यादा' सार्थक-चिन्तन का दर्पण है। 'मेरे प्यारे महावीर' तथा 'नहीं चाहते अगर भटकना' कवितायें अच्छी हैं।

- डॉ० परमानन्द जड़िया, लखनऊ

शोधादर्श -५५ में समाधिमरण पर सम्पादकीय लेख, जैन संस्कृति में कौशाम्बी, भगवान महावीर की जन्म स्थली, अनेकांतवाद व पर्यावरण आदि सभी लेख अत्यंत पठनीय, मननीय, चिन्तनीय, संग्रहणीय एवं प्रशंसनीय हैं। क्षणिकायें भी हृदयग्राही व उद्देश्यपूर्ण हैं। सजग प्रहरी के रूप में आपने अपनी लेखनी से समाज को जगाने का अथक प्रयत्न किया है।

- डॉ. ताराचंद्र जैन बख्शी, जयपुर

शोधादर्श के इस अंक में आपने स्व. अगरचंद जी नाहटा का स्मरण किया, यह बहुत अच्छा लगा। मेरा उनसे अतिनिकट का सम्पर्क था। मैं जब **'जैन जगत'** का संपादक (१९४७-१९५५) था, तब उनसे बराबर पत्राचार होता रहता था। सन् १९५७ में तो मैं बीकानेर उनके यहीं ठहरा था। उनका संग्रहालय अद्भुत था।

महात्मा गांधी जी की 'दिगम्बरत्व की मर्यादा' टिप्पणी **शोधादर्श** के अलावा किसी भी जैन पत्रिका ने प्रकाशित करने का साहस नहीं दिखाया। पत्रकार को तो निष्पक्ष, निर्भय और स्वतंत्र चेता होना चाहिए।

श्री भूतोड़िया जी की पुस्तक पर समीक्षा बहुत अच्छी है। महात्मा भगवानदीन पर तो मैंने ही उन्हें लिख भेजा था।

- श्री जमनालाल जैन, सारनाथ

शोधादर्श- ५५ में भाई रमा कान्त के लेख "अगरचन्द नाहटा" और "इतिहास-मनीषी डॉ. ज्योति प्रसाद जैन" बहुत अच्छी कृतियाँ हैं जिनमें जैन धर्म के दो धुरन्धर विद्वानों के जीवन पर प्रकाश डालकर पाठकों को बहुत अच्छी जानकारियां दी हैं।

भाई शशि कांत का कौशाम्बी पर लेख जानकारियां देने वाला है। समाधिमरण पर सम्पादकीय लेख पढ़कर मुझे याद आया कि श्री एस. के. शहा ने समाधिमरण के औचित्य पर शंका प्रकट की थी। आशा है उनका इस लेख से समाधान हो गया होगा।

– जस्टिस एम. एल. जैन, जयपुर

श्री अजित प्रसाद जी का उनके रोगग्रस्त किन्तु जागृत जीवन के उदाहरण स्वरूप समाधिमरण विषयक संपादकीय पढ़ा। अत्यन्त मननीय तथा विचारणीय यह संपादकीय है।

डॉ. सागरमल जैन का लेख जन्मस्थल पर पुनर्विचार अतिशय संतुलित विचारपूर्ण है। यह तथ्यग्राही है तथा कुंडग्रामपुर ही जन्मस्थल है तथा भ. महावीर वैशाली पुत्र थे यह आगमोक्त प्रमाणों से भी पुष्ट है अतः निर्विवाद है।

– श्री मनोहर मारवडकर, नागपुर

अंक-५५ **शोधादर्श** आद्योपांत पढ़ा। रोचक, पठनीय, मननीय, चिन्तनीय, संग्रहणीय, प्रशंसनीय होते हुए शोधक बोधक के साथ-साथ कहीं रोधक भी है। भोजन में खटाई मिर्च मसाले न हों तो स्वादहीन होता है। कहीं-कहीं ऐसा भी होना ही चाहिए।

भाई डॉ. शशि कांत जी की समीक्षा पृ. ५९/६० पर गजब की है। भाई रमा कान्त जी आपने **शोधादर्श** का सम्पादन बहुत ही सुचारु सटीक किया है। तुम्हारी क्षणिकायें मन प्रफुल्ल करती हैं। कौशाम्बी की डिटेल्स खोजी लिखी हैं। नाग आकृतियों का संग्रह प्रशंसनीय है। अनेकांत जैनधर्म की जान है। मीनाक्षी ने जैनधर्म की प्राचीनता लिखने में चार चांद लगाये हैं।

– श्री महावीर प्रसाद जैन सर्राफ, दिल्ली

शोधादर्श मुझे बराबर मिल रहा है। इसकी सामग्री श्रेष्ठ व पठनीय रहती है। सत्य कटु होता है। शायद कई को इससे कष्ट होता होगा परन्तु आप अपना सद् प्रयास जारी रखेंगे।

– श्री रतनेश कुमार जैन
सम्पादक-अहिंसा संदेश, रांची

शोधादर्श मार्च अंक मिला। समाधिमरण पर आपका लेख/आपके विचार इस विषय में उचित हैं।

– साहु शैलेन्द्र जैन, खुर्जा

श्री अजित प्रसाद जैन

जैन समाज के एक मूर्धन्य विद्वान, निर्भीक पत्रकार और वयोवृद्ध समाजसेवी श्री अजित प्रसाद जैन का दिनांक २५ जून, २००५ ई. को लखनऊ में देहावसान हो गया। वह विगत डेढ़ वर्ष से गम्भीर रूप से अस्वस्थ चल रहे थे और पिछले छह मास से तो उनका स्वास्थ्य उत्तरोत्तर शिथिल होता जा रहा था। तथापि वह अपने दृढ़ मनोबल से अपना चिन्तन-लेखन अन्त तक करते रहे और आसन्न मृत्यु से तीन दिन पूर्व उन्होंने अपना अन्तिम लेख लिखाया। २६ जून को उनका पार्थिव शरीर पंचतत्व में विलीन हो गया।

उनकी अन्तिम यात्रा में जैन एवं जैनेतर समाज के लोग भारी संख्या में सम्मिलित थे। जिन तीन संस्थाओं से वह अन्यतम रूप से सम्बद्ध रहे थे, यथा- तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, ज्योति प्रसाद जैन ट्रस्ट और अनन्त-ज्योति विद्यापीठ, की ओर से श्रद्धास्वरूप पुष्पचक्र अर्पित किये गये। उनकी अन्तिम इच्छा के अनुसार, एक नैष्ठिक श्रावक के अनुरूप, हिंसा से विरत प्रक्रिया से दाह संस्कार विद्युत् शवदाह गृह में किया गया।

२८ जून को चारबाग, लखनऊ में स्थित मुन्नेलाल कागजी धर्मशाला के प्रांगण में उनके प्रति लखनऊ की विभिन्न संस्थाओं के प्रतिनिधियों द्वारा श्रद्धांजलि अर्पित की गई। मेरठ से वहाँ की जैन बिरादरी के प्रतिनिधि श्री हुकमचंद जैन, टिकैतनगर से श्री लालचंद जैन, हरदोई जैन समाज के अध्यक्ष श्री सुमतप्रसाद जैन, स्थानकवासी समाज एवं ओसवाल जैन समाज की ओर से श्री लूणकरण नाहर, जैन शिक्षण संस्थान की ओर से श्री शैलेन्द्र जैन, दिगम्बर जैन महासमिति एवं मुन्नेलाल कागजी ट्रस्ट की ओर से श्री अजय कागजी, श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन (धर्म संरक्षिणी) महासभा की ओर से श्री विजय काला, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति की ओर से श्री नरेशचंद्र जैन, जैन मिलन की ओर से श्री विशाल जैन, अग्रवाल सभा के श्री जगदीश जिन्दल तथा अन्य प्रबुद्ध जनों यथा- श्री विष्णुदत्त शर्मा, डॉ. महावीर प्रसाद जैन 'प्रशान्त' और श्री प्रकाश चन्द्र 'दास' ने श्रद्धेय अजित प्रसाद जी के प्रति श्रद्धा-सुमन अर्पित किये। उनके भ्रातृज श्री रमा कान्त ने श्रद्धांजलि सभा का संचालन किया और ज्येष्ठ भ्रातृज डॉ.शशि कान्त ने उनके जीवन, कृतित्व और रुग्णावस्था के अन्तिम दिनों के सम्बन्ध में मार्मिक प्रकाश डाला।

स्वर्गीय श्री अजित प्रसाद जैन का जन्म मेरठ में १ जनवरी, १९१८ ई. को हुआ था और गत १ जनवरी, २००५ ई. को उनका ८८वां जन्म दिन मनाने का सुयोग उनके परिवारजनों और इष्टमित्रों को प्राप्त हुआ था। उत्तर प्रदेश सचिवालय सेवा में प्रवेश होने पर १९३९ ई. से लखनऊ ही उनकी कर्मस्थली रही। सेवाकाल में अपने संवर्ग को प्राप्त उच्चतम पद तक उन्होंने पदोन्नति पाई और एक कुशल एवं सत्यनिष्ठ प्रशासक की उनकी छवि रही। वह प्रारंभ से ही सामाजिक कार्यों से जुड़े रहे और जैन समाज की अखिल भारतीय एवं स्थानीय संस्थाओं के अतिरिक्त वह अग्रवाल सभा और अग्रवाल शिक्षण संस्थान के भी आजीवन सदस्य रहे। सेवानिवृत्ति के उपरान्त उत्तर प्रदेश संस्कृत एकेडेमी के मानद कोषाध्यक्ष रहे। श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन (धर्म संरक्षिणी) महासभा के मुखपत्र 'जैन गज़ट' के प्रकाशक एवं समाचार सम्पादक के रूप में सन् १९८१ से १९८८ तक सम्बद्ध रहे।

भगवान महावीर के २५००वें निर्वाण महोत्सव के लिये उत्तर प्रदेश में मुख्य मंत्री जी की अध्यक्षता में गठित 'श्री महावीर निर्वाण समिति' के वह शासन स्तर पर उप सचिव एवं प्रभारी अधिकारी थे। शासकीय समिति का कार्यकाल समाप्त होने पर उन्हीं की सूझबूझ और प्रयत्न से १९७६ ई. में **'तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश'** का रजिस्टर्ड सोसायटी के रूप में गठन हुआ और उन्हीं के प्रयास से शासन से समिति को अनुदान प्राप्त हो सका जो उसका ध्रौव्य फण्ड बना। उनके निर्देशन और संचालन में शोध पुस्तकालय की स्थापना हुई, आर्थिक रूप से विपन्न विद्यार्थियों के लिये छात्रवृत्ति की व्यवस्था की गई और असहाय व्यक्तियों को आर्थिक सहायता की व्यवस्था की गई। १९८६ ई. में उन्होंने अपने अग्रज इतिहास-मनीषी स्व. डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन की प्रेरणा और सहयोग से एक चातुर्मासिक पत्रिका **'शोधादर्श'** का प्रकाशन प्रारंभ किया और अग्रज के ११ जून, १९८८ ई. को निधन के उपरान्त उसके प्रकाशन एवं सम्पादन का दायित्व कुशलतापूर्वक संभाला। **'शोधादर्श'** की प्रतिष्ठा एक आदर्श शोध-पत्रिका एवं समाजचेता-पत्रिका के रूप में हो गई। जैन पत्रकारिता के क्षेत्र में अन्यतम योगदान के लिये श्री अजित प्रसाद जी को वर्ष १९९८ के 'आचार्य विमलसागर (भिण्ड) श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार' से सम्मानित किया गया, पुनः २००२ का 'श्री प्रेमचन्द जैन पत्रकारिता पुरस्कार' अहिंसा इण्टरनेशनल, नई दिल्ली, द्वारा प्रदान किया गया।

'शोधादर्श' के अतिरिक्त वह जयपुर से प्रकाशित पाक्षिक **'समन्वयवाणी'** के भी विगत कई वर्ष से प्रधान सम्पादक रहे हैं।

श्रद्धेय अजित प्रसाद जी जैन समाज के एक सजग प्रहरी थे। प्रशासनिक और सामाजिक जिन क्षेत्रों से वह सम्बद्ध रहे उसमें उन्हें विशेष सम्मान की दृष्टि से देखा जाता रहा। १० मई, १९८७ को उनका सार्वजनिक अभिनंदन अनन्त-ज्योति विद्यापीठ द्वारा किया गया था। २३ जून, १९९० को सचिवालय सेवा को विशेष गरिमा प्रदान करने के लिये उ.प्र. सचिवालय सेवा अधिकारी संघ द्वारा उन्हें सम्मानित किया गया था। पहली जनवरी १९९३ को उनका अमृत महोत्सव मनाया गया था और अग्रवाल सभा द्वारा भी उनका अभिनन्दन किया गया था। विगत २ अक्टूबर, २००४ को भी लखनऊ की जैन समाज द्वारा उनका सार्वजनिक अभिनन्दन किया गया था।

पारिवारिक त्रासदियों ने उनको विचलित नहीं किया। ४ नवम्बर, १९९३ को उनकी सहधर्मिणी का वियोग हो गया। २१ जुलाई, २००० को उनके कनिष्ठ पुत्र और २१ अगस्त, २००२ को उनके ज्येष्ठ पुत्र का भी निधन हो गया। वह स्वयं भी १९८९ से हृदयरोग से गंभीर रूप से पीड़ित रहे तथा जनवरी २००३ में उन्हें दूसरी बार गम्भीर हृदयाघात हुआ। दिसम्बर २००३ में तीसरा हृदयाघात हुआ तथा पुनः अप्रैल २००४ में चौथा और पांचवा हृदयाघात हुआ जिनके फलस्वरूप उनकी शारीरिक क्षमता उत्तरोत्तर क्षीण होती गई। इसी परिप्रेक्ष्य में उन्होंने **'शोधादर्श'** (जुलाई २००४) में अपनी 'अन्तिम अभिलाषा' भी लेखबद्ध कर दी। तदपि एक मृत्युंजयी के समान वह प्रायः एक वर्ष मृत्यु से संघर्ष करते रहे। उनका वियोग परिवार, समाज और सम्बद्ध संस्थाओं तथा इष्टमित्रों के लिये एक त्रासदी है। यह एक ऐसी शून्यता और रिक्ति है जो निरंतर सालती रहेगी। जयपुर से **'समन्वयवाणी'** के सम्पादक श्री अखिल बंसल ने सारांश रूप में यथार्थ ही संसूचित किया है कि श्री अजित प्रसाद जैन जी के निधन में हमने सच्ची बात कहने व लिखने वाला निर्भीक पत्रकार खो दिया है।

(जिन इष्टमित्रों के श्रद्धेय अजित प्रसाद जैन जी के सम्बन्ध में श्रद्धांजलि-सान्त्वना संदेश हमें प्राप्त हुए हैं, हम उन सबके हृदय से आभारी हैं। ये सभी सन्देश **शोधादर्श** के **श्रद्धांजलि अंक** में समाहित किये जायेंगे।)

- रमा कान्त जैन,

ज्योति निकुंज चारबाग, लखनऊ - २२६००४

श्री अजित प्रसाद जैन

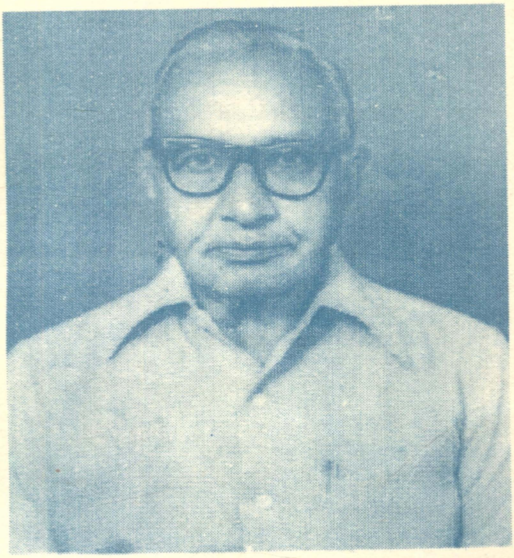

जन्म
१ जनवरी, १६१८

महाप्रयाण
२५ जून, २००५

आवश्यक सूचना

इस वर्ष का वार्षिक शुल्क ५० रु. (पचास रुपये), यदि अभी नहीं भेजा हो, तो कृपया मनीआर्डर द्वारा 'महामंत्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र., पारस सदन, आर्य नगर, लखनऊ–२२६ ००४', को शीघ्र ही भेजने का अनुग्रह करें। चेक लखनऊ के ही स्वीकार होंगे। एक प्रति का मूल्य २० रु. (बीस रुपये) है। मनीआर्डर भेजने पर एक पोस्ट कार्ड भी अपने पूरे नाम पते के साथ उसकी सूचना अवश्य भेजें।

शोधादर्श चातुर्मासिक पत्रिका है और सामान्यतया इसके अंक मार्च, जुलाई व नवम्बर में प्रकाशित होते हैं।

शोधादर्श में प्रकाशनार्थ शोधपरक एवं अप्रकाशित लेख आमंत्रित हैं। लेख कागज के एक ओर सुवाच्य अक्षरों में लिखित अथवा टंकित होना चाहिये और उसमें यथावश्यक सन्दर्भ/स्रोत सूचित किये जाने चाहिए। यथासंभव लेख ३–४ टंकित पृष्ठ से अधिक न हो। *लेख की एक प्रति अपने पास अवश्य रख लें। अप्रकाशित लेख–रचना लौटाना कठिन होगा।*

शोघादर्श में समीक्षार्थ पुस्तकों तथा पत्र–पत्रिकाओं की *दो प्रतियां* भेजी जायें।

शोधादर्श में प्रकाशित लेखों को उद्धरित किये जाने में आपत्ति नहीं है, परन्तु *शोधादर्श* का श्रेय स्वीकार किया जाना और पूर्ण सन्दर्भ दिया जाना अपेक्षित है।

प्रकाशनार्थ लेख और समीक्षार्थ पुस्तक/पत्रिका सम्पादक को पारस सदन, आर्य नगर, लखनऊ–२२६ ००४, के पते पर भेजे जायें।

लेखक के विचारों से सम्पादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। लेखों में दिये गये तथ्यों और सन्दर्भों की प्रामाणिकता के संबंध में लेखक स्वयं उत्तरदायी है।

सभी विवाद लखनऊ में स्थित सक्षम न्यायालयों /न्यायाधिकरणों के क्षेत्राधिकार के अधीन होंगे।

सुधी पाठक कृपया अपनी सम्मति और सुझावों से अवगत करावें ताकि पत्रिका के स्तर को बनाये रखने और उन्नत करने में हमें प्रोत्साहन तथा मार्गदर्शन प्राप्त होता रहे। कृपया पत्रिका पहुंचने की सूचना भी देवें।

— प्रधान सम्पादक

नोट– ऊपर जहाँ–जहाँ 'पारस सदन, आर्यनगर' अंकित है उसके स्थान पर 'ज्योति निकुंज, चार बाग' पढ़ा जाय।